

पूरब और पश्चिम—ज्ञानप्रभा का जब संस्कृति अंक निकालने का विचार बना तो केवल एक ही अंक इस विषय पर निकालना चाहते थे। किन्तु संस्कृति एक विशद विषय है एवं सामग्री इतनी इकट्ठी हो गई कि एक अंक में नहीं समा सकी। अतः यह अगला अंक भी संस्कृति को समर्पित है। पिछले अंक एवं इस अंक में भी संस्कृति के विभिन्न आयामों पर प्रकाश डाला गया है। किन्तु एक बिन्दु, जिसकी प्रायः चर्चा होती है, अछूता रह गया। वह बिन्दु है पूर्व एवं पश्चिम की संस्कृति या भारतीय एवं पाश्चात्य संस्कृति। इन दोनों में क्या मौलिक अन्तर है इस विषय पर एक लेख ज्ञान प्रभा में चार वर्ष पूर्व प्रकाशित हुआ था। इस लेख कुछ अंक इस अन्तर को स्पष्ट करने के लिये नीचे दिये जा रहे हैं:-

गुरुदेव रवीन्द्र नाथ टैगोर ने लिखा है कि पश्चिमी तथा भारतीय संस्कृतियों का जन्म भिन्न पृष्ठभूमि एवं परिस्थितियों में हुआ है। पश्चिमी संसार में आदि मानव ने जब आंखें खोली तो प्रकृति एक शत्रु के रूप में उपस्थित थी। चारों ओर बर्फ थी, टंडा जमा हुआ समुद्र था एवं बर्फीले तूफानों से सामना था। कुछ स्थानों पर तो वनस्पति का कोई चिन्ह नहीं था एवं केवल पशु वध ही जीवन का सहारा था। प्रकृति के भयानक तांडव एवं हिंस्र रूप से रोज ही सामना होता था। अतः उस आदि मानव के सामने एक ही विकल्प था कि वह प्रकृति के विरुद्ध संघर्ष करे एवं उस पर विजय प्राप्त करके उसे अपने वश में कर ले। 'प्रकृति पर विजय' यही पश्चिम के निवासियों के जीवन का मूल मंत्र था।

इसके विपरीत भारतीय उपमहाद्वीप में जब मानव का प्रादुर्भाव हुआ तो उसने प्रकृति को अपनी सहचरी के रूप में पाया। यहां के जंगल फलदार वृक्षों से भरे हुए थे एवं उनमें रंग बिरंगे पक्षी कलरव करते थे। कलकल-निनाद करती नदियां स्वच्छ एवं शीतल जल से परिपूर्ण थीं। अल्प परिश्रम से ही धरती भरपूर अन्न उपजाती थी। दूध के लिये गाय जैसा पशु एवं खेतों में काम करने के लिए उसके बछड़े मौजूद थे। ऐसे में प्रकृति के शत्रु रूप में दिखलाई पड़ने एवं उस पर विजय पाने का प्रश्न ही नहीं था। प्रकृति तो जन्म से ही मित्र थी अतः उसके विभिन्न रूपों को देवता मानकर पूजा जाने लगा। यहां समुद्र की छाती को चीरकर उसे वश में नहीं किया गया अपितु वरुण देवता मानकर उसे पूजा गया। पर्वतराज हिमालय, गंगा एवं गोदावरी एवं यहां तक कि पीपल एवं वट वृक्ष भी देवी देवताओं की भांति आराधनीय हो गये।

पाश्चात्य संस्कृति के निर्माण के तीन आधार रहे : यूनानी एवं रोमन संस्कृति तथा ईसाई धर्म। यूनानी संस्कृति ने अनेक महान दार्शनिकों को जन्म दिया जिनमें अरस्तु तथा प्लेटो प्रमुख थे। सत्य ही सुन्दर है इस सिद्धांत का प्रतिपादन यूनानी दार्शनिकों ने किया। उन्होंने कला तथा दर्शन की उच्चतम सीमाओं को छुआ। एक समय ग्रीस सभ्यता संसार की महानता सभ्यता थी। इसी प्रकार रोम साम्राज्य विश्व का सबसे विशाल साम्राज्य था। रोम ने जिस कानूनी व्यवस्था का निर्माण किया वह आज संसार के अधिकांश देशों में मानी जाती है। बाइबिल पर आधारित ईसाई धर्म तीन सेमेटिक धर्मों में से एक है। दूसरे दो अन्य सेमेटिक धर्म हैं इस्लाम एवं यहूदी। इन तीनों धर्मों की विशेषता है कि वे एक ही धार्मिक पुस्तक, एक ही पैगम्बर तथा एक ही ईश्वर में विश्वास करते हैं। ईसाइयों का धर्म ग्रंथ बाइबिल है, मुसलमानों का कुरान एवं यहूदियों का तालमुद है। समस्त पश्चिम जगत् क्योंकि ईसाई धर्म का अनुयायी है अतः इस धर्म ने भी पाश्चात्य संस्कृति पर गहरा प्रभाव छोड़ा है।

भारतीय संस्कृति की अनेक विशेषताएँ हैं किन्तु यहां हम केवल तीन विशेषताओं पर ही विचार करेंगे और वे हैं ईश्वर, धर्म एवं विविधता। पश्चिम के धर्म एवं ईश्वर की कल्पना पर बाह्य जगत् एवं भौतिकता का प्रभाव परिलक्षित होता है। पश्चिम का एकेश्वरवाद उस ईश्वरीय सत्ता से भिन्न है जिसे भारतीय मनीषा ने अपनी अन्तर्मुखी साधना से अंतस की गहराई में डूबकर खोजा है। पश्चिम संस्कृति की ईश्वरीय सत्ता भी बहिर्जगत् का ही एक अंग है। इस एकेश्वरवाद का ईश्वर कुछ वैसा ही है जैसे कोई एक सर्वशक्तिशाली सम्राट अपनी प्रजा से पृथक हो। उस ईश्वर ने मानव तथा तभी जंतु, पेड़ पौधे, जलचर, नदियां एवं पहाड़ आदि बनाये हैं। ये सब इस ईश्वर की कृपा पर निर्भर हैं एवं वही उनका स्वामी है। वह प्रसन्न भी होता है एवं क्रुद्ध भी तथा उसे प्रसन्न भी किया जा सकता है। यह दंड भी देता है एवं माफ भी करता है। वेदांत में ईश्वरत्व का जो विवेचन है वह इस्लाम एवं ईसाइयत से मेल नहीं खाता। वेदांत द्वारा प्रतिपादित ब्रह्म की परिकल्पना में जो कुछ बाह्य है वह ब्रह्म का ही विस्तार है। जगत् की सत्ता तो एक आरोपित सत्ता है, जो ब्रह्म का ही एक रूप तथा उसके स्वभाव का ही अंग है। ब्रह्म जगत् से पृथक नहीं है और न जगत् ब्रह्म से, ठीक उसी तरह जैसे लहर सागर से पृथक नहीं एवं न सागर लहर से, यद्यपि दृश्यमान जगत् पर दोनों की सत्ता है। उपनिषदों ने उस ज्ञान को जो शब्द दिये हैं वे हैं। 'यत् पिंडे तत् ब्रह्मांडे' और यही भाव 'खल्विदं ब्रह्म' की अनुभूति का भी है।

धर्म की व्याख्या भी भारतीय संस्कृति में पश्चिम से कुछ अलग हटकर की गई है। भारत जिसे 'धर्म' कहकर संबोधित करता है वह उस भाव को व्यक्त नहीं करता जो भाव रिलीजन-मजहब अथवा दीन से प्रकट होता है। धर्म और रिलीजन दो

बिल्कुल ही पृथक-पृथक शब्द हैं एवं दोनों का आशय एवं शब्दार्थ भी बिल्कुल भिन्न है। भारतीय मनीषा जब धर्म शब्द का प्रयोग करती है तो उसकी दृष्टि बड़ी ही उदार एवं व्यापक होती है। धर्म वह कर्तव्य कर्म है जिससे सभी का अभ्युदय हो और स्वयं को भी सत्य का बोध प्राप्त हो।

विविधता भारतीय संस्कृति की एक अन्य विशेषता है। विविधता को जैसी मान्यता भारतीय संस्कृति ने दी है वैसी आज तक विश्व की किसी अन्य संस्कृति ने नहीं दी। यह मान्यता किसी संवैधानिक या कानूनी दबाव में नहीं दी गई, यह तो स्वतः स्फूर्त है एवं उस चेतना की देन है जो 'खल्विंद ब्रह्म' के दर्शन से उपजी है। इस विविधता का रहस्य भारतीय दर्शन के सिद्धान्तवाद में निहित है। आत्मतत्त्व की अनुभूति से उपजा यह समन्यवादी सिद्धान्त कालातीत है। यह न तो रिलीजन से बंधा है और न किसी राजनीति से।

स्वामी विवेकानन्द ने भारतीय संस्कृति की उपरोक्त विशेषताओं को निम्न शब्दों में व्यक्त किया है- 'हिन्दू जाति मनस्तत्व की समीक्षा करते करते दर्शन के द्वारा अपने बढी थी। यूरोपीय जातियां बाह्य प्रकृति की आलोचना करते करते अग्रसर हुई। अब दोनों एक स्थान पर पहुँच रही हैं। मनस्तत्व में से होकर हम उसी एक अनंत सार्वभौमिक सत्ता में पहुँच रहे हैं जो सब वस्तुओं का अंतरात्मा स्वरूप है, जो नित्यमुक्त, नित्यानन्द एवं नित्य सत्ता स्वरूप है। बाह्य विज्ञान के द्वारा भी हम उसी एक तत्व तक पहुँच रहे हैं। यह जगत प्रपंच उसी का एक विकास है-जगत् जो कुछ भी है, उस सबका वह समष्टि स्वरूप है एवं सारी मानव जाति मुक्ति की ओर अग्रसर हो रही है, बंधन की ओर वह कभी जा ही नहीं सकती। मनुष्य नीतिपरायण क्यों हो? इसलिए कि नीति ही मुक्ति का मार्ग है और दुर्नीति बंधन का।'

अमेरिका के भामाशाह-अमेरिका के वारेन बफेट एवं बिल गेट्स संसार के सबसे धनी व्यक्ति हैं। उनकी सम्पति करोड़ों डालर की नहीं अपितु अरबों डालर की है। बफेट ने अपनी 99 प्रतिशत सम्पति दान में देने की घोषणा की है। बिल गेट्स ने 30 अरब डालर जन सेवा के लिए समर्पित करने का निश्चय किया है। उन्होंने एक मुहिम चलाई है जिसमें अमेरिका के अमीर लोगों से कहा गया है कि वे अपनी दौलत का कम से कम आधा हिस्सा जरूरतमंदों के लिये अवश्य दान कर दें। उनकी अपील के फलस्वरूप इस वर्ष अगस्त महीने में अमेरिका के 40 अरबपतियों ने अपनी आधी दौलत दान में देने की घोषणा की है।

भामाशाह का हमारा देश भारत इस मामले में कहां खड़ा है ? क्या हमारे देश में अरबपतियों की कमी है? यदि विभिन्न स्रोतों द्वारा इकट्ठे किये गये आंकड़ों पर

नज़र डालें तो पता लगता है कि इस निर्धन देश में अरबपति अच्छी खासी तादाद में हैं। अरबपतियों के इस भारतीय क्लब के 43 सदस्य हैं एवं मुकेश अम्बानी सबसे ऊपर हैं। हमारी कुल राष्ट्रीय आय विश्व की कुल आय का केवल 18 प्रतिशत है किन्तु संसार के चार ही और देश हैं जहां अरबपतियों की तादाद हमसे अधिक है। भारत में 17 अरबपतियों में प्रत्येक की सम्पति 3 अरब डालर से अधिक है। इस मामले में जापान यू.के. एवं फ्रांस को भी हम पीछे छोड़ चुके हैं।

तब भारत के अरबपति जनहित के लिये अपनी शैलियां क्यों नहीं खोल रहे हैं? हमारा धनाढ्य वर्ग जीवन के अनेक क्षेत्रों में अमेरिका को माडल मानते हुए उसके कदमों पर चलता है किन्तु इस क्षेत्र में उनका अनुसरण क्यों नहीं कर रहा है? प्रसिद्ध उद्योगपति आदी गोदरेज का मत है कि भारत का धनाढ्य वर्ग एक नया एवं अनुभवहीन वर्ग है। उसमें परिपक्वता की कमी है। कुछ समय पश्चात् भारतीय अरबपति भी अपने अमेरिकन साथियों की भाँति ही हो जायेंगे और वैसा ही आचरण करेंगे।

किन्तु केवल यही कारण नहीं है जो हमारे अरबपतियों को भामाशाह बनने से रोके हुए है। केवल अरबपति ही नहीं हम सबका दिल दान देने के लिये तभी पसीजता है जब हमें विश्वास हो जाये कि इस धन का दुरुपयोग नहीं होगा एवं इसे जिस उद्देश्य के लिये दिया जा रहा है उसी में उसका उपयोग किया जायेगा। दानशीलता, उदारता एवं दयाशीलता विश्वास के वातावरण में फलती फूलती हैं। सरकारी एवं गैरसरकारी संस्थाएँ, संगठन एवं उनके कर्मी एवं कार्यकर्ता जब पारदर्शी एवं संदेह से परे होंगे तो दान की गंगा बहेगी।

भारतवर्ष में सरकार और भ्रष्टाचार तो पर्यायवाची हो चुके हैं। कामनवैल्थ गेम्स ने इस दिशा में नये आयाम स्थापित किये हैं। लूट और बेशर्मी की ऐसी मिसाल शायद ही मिल सके। ऐसे उदाहरण भी सामने आये हैं जब प्रधान मंत्री एवं मुख्यमंत्री कोष में बाढ़, भूकम्प, अकाल इत्यादि की सहायता के लिये भेजे गये धन का दुरुपयोग हुआ है।

कारपोरेट जगत से प्रवाहित होने की प्रतीक्षा करने वाली इस भागीरथी को भ्रष्टाचार की इन बाधाओं ने रोक रखा है। आखिर कोई रास्ता तो तलाश करना ही होगा। व्यवस्था ऐसी बने कि भ्रष्टाचार की गुंजाइश ही न रहे। नियंत्रण कम हों एवं नौकरशाहों एवं नेताओं के हाथों से अर्थ व्यवस्था को छुटकारा मिले। कुछ कारपोरेट घरानों ने इसका काट निकाला है। उन्होंने अपने न्यास, संगठन एवं फाउण्डेशन बनाए हैं। कुछ महिला उद्यमी इस क्षेत्र में आगे बढी हैं एवं अमेरिका की फोर्ब्स मैगजीन ने चार ऐसी महिलाओं को सूचीबद्ध किया है। ये हैं-बाइकोन की मालिक किरन

मजूमदार शा, नन्दन नीलकेनी की पत्नी रोहिणी नीलकेनी, एच.सी.एल. के चेयरमैन शिव नाडर की पत्नी किरण नाडर एवं कारपोरेट जगत की प्रसिद्ध महिला अनु आशा। इसमें एन. आर. नारायण मूर्ति की पत्नी सुधा मूर्ति का नाम भी जोड़ जा सकता है। ये महिलाएँ कारपोरेट जगत के धनवान पुरुष वर्ग को दान एवं जनहित के क्षेत्र में चुनौती पेश कर रही हैं।

इस समस्या का एक और भी पहलू है। भारत जैसे जनतांत्रिक एवं प्रगतिशील देश में एक नये मध्यम वर्ग का निर्माण हो रहा है। मध्यम वर्ग के ये लोग अरबपति तो नहीं हैं किन्तु कुल मिलाकर इस वर्ग की ताकत अरबपतियों से भी अधिक है। यह वर्ग करोड़ों में है एवं हर वर्ष लाखों लोग इसमें जुड़ते हैं। आवश्यकता है इस वर्ग को संगठित करने की एवं इसे यकीन दिलाने की कि इसके द्वारा दिये गये धन का दुरुपयोग नहीं होगा। भारत विकास परिषद् इसी कार्य में लगा हुआ है। परिषद् उन स्वयं सेवी संस्थाओं में है जिनकी कार्य प्रणाली 100 प्रतिशत पारदर्शी है एवं इस पर आज तक कोई उंगली नहीं उठ सकी है।

आवश्यकता इस कार्य में और गति लाने की है ताकि देश में हजारों लाखों भामाशाहों का निर्माण हो सके।



THE GENTLEMAN

Cardinal Newman

It is almost a definition of a gentleman to say he is one who never inflicts pain.

The true gentleman carefully avoids whatever may cause a jar or jolt in the minds of those with whom he has clash of opinion, or collision of feeling. His great concern is to put every one at their ease and at home.

He has eyes on all his company; he is tender towards the bashful, gentle towards the distant, and merciful towards the absurd; he can recollect to whom he is speaking; he guards against unreasonable allusions, or topics which may irritate; he is seldom prominent in conversation, and never wearisome.

He makes light of favours while he does them, and seems to be receiving when he is conferring.

Editor's Reflections

DHARMA AND ARTHA

As India is completing last year of the first decade of 21st century, two trends seem to be emerging clearly. The first is the spread of prosperity. This is largely a result of high economic growth. Though 300 million people of India are still living below poverty line but it must be admitted that poverty is decreasing. A new, huge middle class is emerging and for the first time after thousands of years we are beginning to emerge from a struggle against want into an age when the large majority will soon be at ease.

The other emerging trend is the increasing corruption. It is not that Indians were not corrupt in the past. Year after year Transparency International ranked India among the most corrupt. In 2005, its survey showed that 80 percent of citizens had bribed someone in the police; 40 percent had paid a bribe to influence the legal system; 30 percent to government schools or primary health centers. But now the enormity corruption has exceeded all the imaginable limits. The elite service I.A.S. considered to be the back bone of administration seems to be mired in it. The anti corruption raids find crores entashed in lockers, in hundreds of bank accounts and even in the residential houses. A Chief Minister acquires hundreds of crores of rupees in a few months. Even the military brass has caught the vice and the decorated generals are facing court martial.

Apart from accepting and giving bribes for some favour done there is another type of corruption: dereliction of duty and misusing the power. When a school teacher is absent, he spoils the whole education system and teaches a terrible lesson to his students, that you can derelict your duty and get away with it. Similarly when a government doctor remains absent from a village primary health centre, he jeopardizes the whole rural health system. A politician in power pushes

for a ministerial position for his kith and kin, is also no less corrupt than a chief minister minting money.

According to Hindu philosophy, a man's life is based on three tenets: Dharma, Artha, and Kama. Dharma is Sanskrit expression and it is very difficult to define it. Mahabharatha says that Dharma is which helps the upliftment of living beings and which sustains the world. Mahabhartha and Manu Smiriti state that truthfulness, freedom from anger, sharing wealth with others, forgiveness, Ahinsa, straight forwardness, purity and not acquiring illegitimate wealth are some of the rules of Dharma. These rules govern individual's relations with the society.

Artha (material wealth) and Kama (desires) are the two other tenets which govern the individual conduct of a person. With economy growing, the individual prosperity is also increasing. With it the Kama (desire) are also increasing. These desires and greed for wealth know no limits. Sometimes desires exceed the available wealth of an individual and create temptation to acquire more through illegal means. This excessive hunger for wealth to fulfil desires breeds corruption.

It can be safely predicated that in the next decade 2010-2019 our economy will continue to grow rapidly. It is on autopilot and no politician or ideologue will be able to kill the momentum. There is a deep consensus among the public on economic reforms and even during the recent economic crisis there was no hue and cry against the reforms or calls to bring back socialism.

The eminent western historian and philosopher Arnold Toynbee, in one of his books stated :

"Today we are still living in this transitional chapter of the world's history, but it is already becoming clear that a chapter which had a western beginning will have to have an Indian ending if it is not to end in the self-destruction of the human race. At this supremely dangerous moment in human history the only way of salvation for mankind is an Indian way."

But what kind of Indian way it is which is emerging in the 21st century? If Artha and Kama go on growing at the cost of Dharma, then the Indian social fabric may be destroyed. The propounders of Dharma did appreciate the fulfillment of desires but were of the opinion that for the existence of an orderly society and peace and happiness of all, the Karma and Artha should conform to Dharma (Code of Right Conduct).

The epic Mahabharatha tells the story of a time when all the Kshatriya institutions or the ruling class became so corrupt and immoral that they took a path of self-destruction. Seeing no hope of reforming them, the supreme leader of that era, Shri Krishna had to wage a war to cleanse them. In Gita, Krishna says that when there is a decline of Dharma and increase of Adharma, then do I manifest Myself. Perhaps, we also require a leader, a strong-willed reformer who will wage a war against Adharma and stop us from going on the path of self-destruction.

CLEVERNESS AND WISDOM

Cleverness is satisfied with short-term gains; wisdom acts from a wider perspective. Wisdom is founded on confidence rather than arrogance; learning from experience, yet forever open to the power of new possibilities.

Wisdom is not just thinking intelligently, but living intelligently. More than just being effective in daily life, it means we choose our values and basic priorities well and we live by them. It means we can fail, but learn from mistakes. It means we take responsibility for the intended as well as unintended consequences of our actions.

Holy Wisdom

तत्व ज्ञान

दान, भोग और नाश ये तीन गतियां धन की होती हैं। जो न देता है और न भोगता है, उसके धन की तीसरी गति होती है।

- भर्तृहरि



Asking how many times one should chant the mantra is like asking how much water should be given to a plant for it to yield fruit. Watering is required, but the amount of water depends on the nature of the plant, the climate, the quality of the soil, and so on. Water alone is not enough. The plant needs sunlight, fertilizer, air and protection from pests as well. Similarly, on the spiritual path, chanting the mantra is just one facet. Good deeds, good thoughts, and satsang [association with virtuous people] are also necessary. When all of these are present, then one gets the benefit according to God's will.

- Mata Amritanandamayi Devi



Go on doing good, thinking holy thoughts continuously, that is the only way to suppress base impressions. Character is repeated habits, and repeated habits alone can reform character.

- Swami Vivekananda

DARK HOUR

The darkest hour in any man's life is when he sits down to plan how to get money without earning it.

विश्व वन्दनीय भारतीय संस्कृति

- स्वर्गीय विष्णुकान्त शास्त्री

भारतीय संस्कृति विश्व वन्दनीय है। इसका आधार संस्कार और समर्पण है। संस्कृति संस्कार युक्त व्यक्तियों की जीवन पद्धति को कहते हैं। हमारे देश में संस्कार के तीन पक्ष हैं-गुणाधान, दोषापनयन और हीनांगपूर्ति। उसी व्यक्ति को संस्कार शील कहा जाता है जो गुणों की वृद्धि, दोषों की कमी और कमियों की पूर्ति पर ध्यान देता है। भारतीय संस्कृति में संस्कारशीलता के लिये गुण-ग्राह्यता और गुणों की वृद्धि पर विशेष ध्यान दिया गया है। इस दृष्टि से गीता में 26 गुणों का वर्णन किया गया है और जिस व्यक्ति में यदि इनमें से चार गुण भी विद्यमान होते हैं उन्हें सुशील एवं सुसंस्कृत माना जाता है। अतः हमें यह देखना चाहिये कि हमारे गुणों में वृद्धि हो रही है या नहीं और यह प्रवृत्ति जीवन की अन्तिम सांस तक रहनी चाहिये। रामकृष्ण परमहंस ने कहा था कि जितने दिन जीऊंगा, उतने दिन सीखूंगा।

गुणाधान-गुण की वृद्धि की दृष्टि से भारतीय संस्कृति में चार गुणों पर विशेष बल दिया गया है-धीरता, दृष्टि, मतिम् और दक्षता। धीरता का अर्थ धैर्य से है अर्थात् विकार अथवा विकृति के कारण बने रहने पर भी चेतना विकृत न हो, प्रलोभन या भय से विचलित न हो और जब तक निश्चित लक्ष्य प्राप्त न हो जाये हम प्रयासों से विचलित न हों। दूसरा गुण उचित दृष्टि है। समाज सेवाका कार्य जब किया जाता है तो अनेक दृष्टि हो सकती हैं जैसे अपने यश के लिये काम करना, अपने विज्ञापन के कार्य करना, विशेष अधिकार प्राप्त करने के लिये कार्य करना अथवा मात्र सेवा की भावना से कार्य करना। इसमें अन्तिम दृष्टि ही उचित दृष्टि है। इसी प्रकार दया एवं सेवा में अन्तर है। दया में दया करने वाले में अहंकार आ जाता है तथा जिसके लिये दया की जाती है वह दयनीय बन जाता है। दूसरी ओर यदि वही कार्य सेवा की भावना से किया जाये तो सेवा करने वाला सेवक कहलाता है तथा जिसकी सेवा की जाती है वह सेव्य बन जाता है। सेवा करने वाला व्यक्ति जीवन में कभी सेवा निवृत्त नहीं होता। तीसरा गुण मतिम् है अर्थात् समस्याका अपनी मति के अनुसार समाधान की तलाश करनी चाहिये। अन्तिम गुण दक्षता है जिसका अर्थ है कि जो भी कार्य किया जाये वह गुणवत्ता के साथ और कुशलता के साथ किया जाये।

संस्कार का दूसरा पक्ष दोषापनयन अर्थात् दोषों में कमी लाने का है। सामान्यतः व्यक्ति को अपने दोष दिखाई नहीं पड़ते लेकिन दूसरों के दोष दिखाई पड़ते हैं। कहा जाता है कि दूसरों का सरसों बराबर दोष दिख जाता है, जबकि अपना बेर बराबर दोष

दिखाई नहीं पड़ता। संस्कार कहता है कि हम अपने स्वयं के दोषों को देखें। भगवान से प्रार्थना करें कि हे भगवन् हमें हमारे दोष दिखाइये, उन्हें दूर करने में सहायता कीजिये और हमें सफल बनाइये।

संस्कार का तीसरा पक्ष अपनी कमियों की पूर्ति का है। जिसका अर्थ है कि यदि कोई अच्छी बात हममें नहीं है लेकिन दूसरों में है तो उसे हमें उसे ले लेना चाहिये। भारतीय संस्कृति कभी यह नहीं कहती कि अपने ज्ञान के चारों ओर रेखा खींच दो वरन् यह कहती है कि दसों दिशाओं से ज्ञान को ग्रहण करना चाहिये। इसमें इतना अवश्य है कि जो परम्परा से लिया जाये उसे युगानुकूल बना लिया जाये तथा जो विदेशों से लिया जाये उसे देशानुकूल बना लिया जाये। अन्त में प्रत्येक व्यक्ति को समाज सेवा की दृष्टि से यह संकल्प लेना चाहिये कि इस जीवन में मैंने समाज से जितना लिया है, मरने से पहले उसे कुछ ज्यादा समाज को लौटा सकूँ। सेवा को परिषद् का मूल धर्म मानते हुए महामहिम ने निम्न पंक्तियां भी उद्धृत कीं जिन्हें सुनकर श्रोता भाव-विभोर हो गए:-

“हारे नहीं जब हौसले, तब कम हुए फासले।

दूरी नहीं कोई नहीं, केवल समर्पण चाहिए।

कुछ कर गुजरने के लिए, मौसम नहीं मन चाहिए।”

(भारत विकास परिषद् के राष्ट्रीय अधिवेशन में मुरादाबाद में 27 दिसम्बर 2003 को दिये गये भाषण पर आधारित।)



There is something common in successful people like honesty, industry morality, courage, respect, faith, compassion, humility, discipline and doing one's duty. They believe that education is the key to advancement in life. Education does not mean literacy or the ability to outstrip others but the ability to discriminate what is right or wrong.

आध्यात्मिकता-भारत की आत्मा एवं भारतीय संस्कृति की पहचान

- डॉ० प्रदीप कुमार (कनाडा)

पुरातन संस्कृतियों में भारतीय संस्कृति एकमात्र ऐसी संस्कृति है जो अपनी पूर्णता में जीवित है। अन्य संस्कृतियां जैसे ग्रीक, रोमन, मिश्र आदि या तो इतिहास के पन्नों में लोप हो गयी या जैसे चीनी संस्कृति, इतनी बदल गयी कि उसे पहचानना मुश्किल है।

भारतीय संस्कृति की अटूटता के पीछे आध्यात्मिकता है जो उसकी पहचान और आत्मा है। भारत के लोकतंत्र की ऊर्जा का स्रोत भी आध्यात्मिकता है। भारतीय लोकतंत्र का ढांचा यद्यपि यूरोप से आया किन्तु उसकी आत्मा नितान्त भारतीय है। चाहे वह रविशंकर का संगीत हो या बिरजू महाराज का नृत्य, रवीन्द्रनाथ टैगोर की गीतांजलि हो या गांधी की अहिंसामय क्रांति, मजदूर की झोपड़ी हो या पूंजीपति का महल, अध्यात्म का प्रकाश हर जगह छाया मिलेगा। पश्चिम बंगाल के लोग वोट भले ही मार्क्सवादी पार्टी को दें किन्तु उनका सबसे बड़ा उत्सव दुर्गा पूजा ही रहेगा।

जहां पश्चिमी समाज ने न्यूटन, आइन्सटीन, डार्विन और हाइजनबर्ग जैसे महान वैज्ञानिक दिए वहां भारत की धरती पर बुद्ध, रामकृष्ण परमहंस, रमन, श्री अरविन्द, विवेकानन्द, गांधी और कृष्णामूर्ति जैसे ऋषियों का जन्म हुआ। आज भी एक भारतीय का माथा एक योगी और सन्यासी के सामने स्वतः झुक जाता है। विश्व इतिहास में सम्राट अशोक केवल एक उदाहरण है। जिन्होंने विजय और ऐश्वर्य के शिखर पर पहुंच कर बुद्ध के अध्यात्म मार्ग को अपनाया।

उपरोक्त तथ्यों को जानना इसलिए जरूरी है ताकि भारतीय संस्कृति की पहचान पूर्णता में बनी रहे। पहचान ही चिन्तन और कर्म का केन्द्र होती है। बिना विशिष्ट पहचान के संस्कृति या तो अराजकता में डूब जाती है या उसकी सृजन क्षमता समाप्त हो जाती है।

आध्यात्मिकता की अटूटता को बनाए रखने के लिए उसका निरन्तर नवीनीकरण आवश्यक है। जैसे विज्ञान की जीवंतता और उन्नति नए वैज्ञानिकों और

प्रयोगों से होती है उसी प्रकार अध्यात्म का प्रवाह नए ऋषियों और ज्ञान से सम्भव हैं जो सम-सामायिक हों। बुद्ध और श्री अरविन्द का अध्यात्म पथ पर अन्तिम अनुभव और शब्द नहीं है। भविष्य में अनेकों बुद्ध और अरविन्द अपेक्षित हैं।

सत्य शाश्वत है किन्तु उसका अर्थ समयानुसार बदल जाता है। गीता में कृष्ण के कथन-

यदा यदा हि धर्मस्य का यही अर्थ है। धर्म ब्रह्मांड का आधार है। उसका विनाश सम्भव नहीं किन्तु उस धर्म का पुराना अर्थ बदलते युग में रूढ़िवादी और अप्रासंगिक हो जाता है।

संचार और यातायात साधनों की प्रचुरता से पृथ्वी पर एक विश्व संस्कृति का उदय हो रहा है। यह संस्कृति व्यक्तिवादी, भौतिकवादी विज्ञान तर्क और प्रमाण पर आधारित है। किन्तु इस संस्कृति में जहां बाहरी चमक और भौतिक समृद्धि है वहां आन्तरिक अंधेरा और खोखलापन भी है। इसे अध्यात्म के एक नए सूरज की जरूरत है। विश्व-संस्कृति को। भारतीय अध्यात्म के पास है ऐसे सूर्य निर्माण की क्षमता इसीलिए वर्तमान और निकट भविष्य में भारतीय संस्कृति के लिए कुछ सृजनात्मक करने का अवसर है और रचनात्मक चुनौती भी। किन्तु अध्यात्म का वह नया आयाम सन्यास, विश्वास-अन्धविश्वास, गुरु-शिष्य परंपरा पर आधारित नहीं हो सकता है। इस नए अध्यात्म के आधार तर्क-वितर्क, प्रमाण, विज्ञान, सम्पूर्ण जीवन का स्वीकार और शिक्षक-विद्यार्थी होंगे। हमारे आश्रम विद्यालयों का रूप ले लेंगे। भारत के प्राचीन 'नालन्दा विश्वविद्यालय' का कुछ ऐसा ही रूप था। दलाई लामा ने इस सन्दर्भ में इतना तक कहा दिया कि बौद्ध धर्म में कोई सिद्धांत बिना प्रमाण के स्वीकार नहीं किया जाना चाहिए।

विश्व-संस्कृति के उदय और उत्थान में भारतीय संस्कृति को यदि अहम भूमिका निभानी है तो चमत्कारी गुरुओं की जगह ऋषि वैज्ञानिकों के लिए स्थान बनाना पड़ेगा। इसका स्पष्ट प्रमाण पश्चिम के देशों में है जहां बुद्ध का विपश्यना ध्यान और पतंजलि का योग-दर्शन विश्वविद्यालयों से लेकर अस्पतालों और स्कूलों और घर-घर में फैल चुका है। कारण? बुद्ध और पतंजलि दोनों ही ऋषि-वैज्ञानिक हैं उनका दर्शन अभ्यास और प्रयोग पर आधारित है अन्धविश्वास पर नहीं। आज योग और विपश्यना के ऊपर हुए अनेक अनुसंधान उनकी उपायेगिता को साबित कर चके हैं।

लेकिन आध्यात्मिकता के सन्दर्भ में भारतीय एक तथ्य को नजरअन्दाज नहीं कर सकते हैं और वह तथ्य है कि भारतीय संस्कृति की आत्मा को व्यक्त करने के

लिए देह की जरूरत है। अध्यात्म की वह देह आर्थिक व्यवस्था, राजनीति, सामाजिक और सुरक्षा व्यवस्था से निर्मित होगी। बिना काम, अर्थ और धर्म के मोक्ष अपूर्ण है।

दीन, क्षीण व्यक्ति वाले देश के गुण अवगुण हो जाते हैं और शक्तिशाली व्यक्ति और समाज के अवगुण फैशन की परम्परा बन जाते हैं। इसीलिए भारतीय संस्कृति की आध्यात्मिक आत्मा को आर्थिक, राजनीतिक, सामाजिक और सुरक्षा से समृद्ध भारत की आवश्यकता है। तभी भारतीय संस्कृति विश्व संस्कृति का हृदय बन सकेगी।



सम्पर्क F सहयोग F संस्कार F सेवा F समर्पण

पढ़िये और पढ़ायें तथा भेंट करें

GYAN PRABHA
(QUARTERLY)

ज्ञान
प्रभा

त्रैमासिक

त्रैमासिक ज्ञान प्रभा के
आजीवन सदस्य बनें।

सहयोग राशि वार्षिक

100/-

आजीवन 1500/-

20

आगामी अंक
ग्रामीण शिक्षा

संस्कृति के नए आयाम

— सुभाष सेतिया

मनुष्य के भावजगत और आचरण के परिष्कार या संस्कार की प्रक्रिया ही संस्कृति है। संस्कृति एक सनातन प्रक्रिया है, जो न केवल मनुष्य को मनुष्य बने रहने की सामर्थ्य और क्षमता प्रदान करती है बल्कि उसे बेहतर और श्रेष्ठ बनने को प्रेरित करती है। यह हमारे भाव, चिंतन और चेतना या आत्मा का नियमन, संयमन और नियंत्रण करके हमारे मनोजगत और आचरण को सही दिशा देते हुए जीवन को सार्थकता और आत्मानुभूति की राह पर चलना सिखाती है। संस्कृति ही है जो मनुष्य को अन्य प्राणियों की तुलना में उच्च धरातल पर अवस्थित करती है। यह उत्थान ही ऐसी अजस्र धारा है जो स्थान, समय और समाज की विशिष्टताओं को समेटते हुए भी सदैव व्यापकता का संवरण करके एक मनुष्य को दूसरे मनुष्य से, एक समुदाय को दूसरे समुदाय से, एक समाज को दूसरे समाज से और एक राष्ट्र को दूसरे राष्ट्र से जोड़ती चलती है। यह हमारी मानसिकता में व्याप्त आधारभूत प्रदोषों तथा अवगुणों को संस्कारित करके उन्हें आदर्शों व सद्गुणों में बदलने की गतिशील चेष्टा है। मोटे तौर पर कह सकते हैं कि संस्कृति मनुष्य की नैसर्गिक नकारात्मक प्रवृत्तियों पर सकारात्मक प्रवृत्तियों की विजय की चिरंतन यात्रा है जो हमें मृत्यु से जीवन की ओर तथा अंधकार से प्रकाश की ओर उन्मुख करती है। 'स्व' से ऊपर 'पर' की चिंता और समूह के कल्याण की इच्छा ही ऐसी मनोभूमिका है जो मनुष्य को चौपायों से अलग करती है। यह पृथकता ही संस्कृति की परिणति और साध्य है।

संस्कृति किसी एक काल या समाज की उपज नहीं होती। यह कालातीत और समय निरपेक्ष है। यह सच है कि समय और परिस्थितियों के अनुरूप इसमें नए-नए पहलू और आयाम जुड़ने लगते हैं किन्तु अपनी सत्ता और अनुभूति में यह अक्षर और चिरंतन है।

जिस तरह निरंतर बहती नदी हर पल नया जल प्रवाहित करते हुए भी वही बनी रहती है, उसी तरह संस्कृति नए आयामों को आत्मसात करते हुए भी चिरंतन और सनातन बनी रहती है।

पिछले कुछ दशक न केवल भारत में बल्कि समूचे विश्व में क्रांतिकारी परिवर्तन के वर्ष रहे हैं। वैचारिक, आर्थिक और टेक्नोलाजी के स्तर पर अनेक दूरगामी परिवर्तन सामने आए हैं जिन्होंने मनुष्य के समूचे जीवन को प्रभावित किया है। संस्कृति

मानव जीवन का अभिन्न पक्ष है, अतः इन बदलावों से उसका अछूता रहना संभव नहीं है। इन परिवर्तनों का विश्लेषण अपने आप में समुचित दिलचस्प और विचारोत्तेजक प्रयोग है।

साहित्य और कला संस्कृति की अभिव्यक्ति के मुख्य माध्यम हैं। साहित्य और विभिन्न ललित और दृश्य कलाएं संस्कृति की वाहक रही हैं। अभिव्यक्ति के इन तत्त्वों के माध्यम से ही संस्कृति मानव मन का संस्कार करती है और परिवर्तन को सहज रूप से आत्मसात करने की क्षमता जागृत करती है। संस्कृति के आंतरिक और बाह्य दोनों स्वरूपों में परिवर्तन और संशोधन हम अभिव्यक्ति के इन माध्यमों में भी स्पष्ट देख सकते हैं। इन विधाओं की संरचना, शिल्प और वस्तुजगत में परिवर्तन तो सहज रूप में हुआ ही है, साथ में इनका विस्तार भी हुआ है और समय की गति के साथ कुछ नई विधाएं भी अस्तित्व में आई हैं। संस्कृति की अभिव्यक्ति के इन माध्यमों में समन्वय और अभिव्यक्ति की प्रभाव क्षमता तथा अपील गहन और पुष्ट हुई है।

हम समाज को संस्कृति से विलग नहीं कर सकते। जाने-माने आलोचक और चिंतक डा. रामविलास शर्मा अपनी पुस्तक **भारतीय संस्कृति का हिंदी क्षेत्र** में स्पष्ट कहते हैं कि 'सामान्यतः सामाजिक इतिहास को सांस्कृतिक इतिहास से अलग रखा जाता है। ऐसा अलगाव अनावश्यक है। हमारी संस्कृति हमारे सामाजिक जीवन को निरंतर प्रभावित करती है।' वास्तव में संस्कृति है किसके लिए? समाज के लिए ही न? जो सांस्कृतिक मूल्य विकसित होते हैं, वे प्रयोग और आचरण के लिए होते हैं। समाज और संस्कृति एक-दूसरे से अलग रहकर अधूरे हैं। इसका संबंध शब्द और अर्थ की तरह है जो एक-दूसरे के बिना व्यर्थ हैं।

संस्कृति सदैव दर्शन, अध्यात्म और आत्मबोध पर आधारित रही है जिसमें धर्म और आस्था का भी प्रमुख स्थान रहा है। भारतीय संस्कृति विभिन्न मतों और विचार धाराओं का सम्मान करते हुए 'मुंडे मुंडे मतिर्भिन्ना' की उदारतावादी दृष्टि को साथ लेकर चलती रही है। त्याग, सत्य और अपरिग्रह के प्रति आग्रह इसका मूल स्वर रहा है। किन्तु बीसवीं शताब्दी में पनपे भौतिकवादी दर्शनों और विचारधाराओं तथा उद्योग और टेक्नोलाजी के विकास ने मानव चेतना और बौद्धिकता में दर्शन, अध्यात्म तथा धर्म की नीवों को हिलाकर भौतिकवाद के महत्त्व को बढ़ा दिया है। आज का मानव आस्था के संकट के साथ-साथ विचारधारा या आइडियोलोजी की शून्यता के दौर में पहुंच चुका है। अपरिग्रह के प्रति सैद्धांतिक आग्रह भले ही तिरोहित न हुआ हो किन्तु हमारे विश्वास और आचरण में भौतिकता और भोगवाद को अधिक प्रश्रय मिल रहा है। दार्शनिक चिंतन और आध्यात्मिक धार्मिकता के मुकाबले कर्मकांड तथा आंडबर को प्रमुखता मिलती दिखाई दे रही है।

संस्कृति का एक नया आयाम यह सामने आया है कि इसकी लोकतंत्रीकरण हो रहा है। जो चिंतन, अध्यात्म और धर्म-विमर्श पहले अभिजात वर्ग की बपौती समझे जाते थे, अब सामान्य जन के घेरे में आ गए हैं और समस्त संस्कृति कर्म 'क्लास' की बजाय 'मास' का विषय बन रहा है।

यह खुलापन और बंधनों की शिथिलता हमारी सामाजिकता में भी प्रकट हो रही है। उदाहरण के लिए धर्मग्रन्थों का अध्ययन, अध्यापन तथा धर्म-चर्चा एक समय पर समाज के विशिष्ट वर्ग तक सीमित थी किन्तु आज भारतीय समाज के प्रत्येक वर्ग की उन तक पहुंच है। इसी प्रकार कलाओं और साहित्य का आस्वादन भी राजाओं, धनाढ्यों और उच्च विद्वत् वर्ग तक सीमित न रहकर निर्धन, धनी, शिक्षित, अशिक्षित-सभी वर्गों को उपलब्ध है। टेक्नोलाजी के विकास की बदौलत कोई भी एक धार्मिक, आध्यात्मिक या कलात्मक कार्यक्रम लाखों-करोड़ों द्वारा एक साथ देखा सुना जा सकता है।

Can India's Culture Survive the Onslaught of Western Influences?

- Arun Kumar

Ours is a huge country with a rich cultural heritage strong enough to fight any external impact-howsoever powerful it may be. Nothing can really affect a culture which has stood the test of time. It is true that the Western culture has crept into our sociocultural life, evidences of which can be seen in our habits, food, clothing, entertainment, inter personal relationship etc.

Girls wear western clothes; boys and girls smoke cigarettes and drink alcohol; men and women have unacceptable relationships; joint families have disappeared; people prefer dining out; cinemas, TV and magazines follow the western fashion, etc. All this Occidental influences seem to disintegrate the social fabric of India.

But the 5000 year-old Indian culture has absorbed tremendous pressure and has remained unaffected all through. The very fact that we still follow the Ayurveda and the yoga; listen to the religious gurus and scriptures; believe in the social mores and moral values; respect social and religious establishments stand testimony to the lotus-like character of our great culture.

भारतीय संस्कृति में नारी अस्मिता और नारी संघर्ष

(पिछले अंक का शेष)

- आशा रानी व्होरा

(वेदों, उपनिषदों एवं रामायण तथा महाभारत काल से ही महिलाओं ने भारतीय संस्कृति के उन्नयन में महती भूमिका निभायी है। इन महान महिलाओं का विवरण पिछले अंक में दिया जा चुका है। इस अंक में पढ़िये विदेशी आक्रमणों के विरुद्ध जूझने वाली महिलाओं का रोमांचकारी विवरण।)

विदेशी हमलों का मुकाबला

लेकिन भारत पर विदेशी आक्रमण बढ़ने के साथ ही भारतीय समाज में सभ्रात कही जाने वाली लगभग हर नारी की स्थिति का यह सारा परिदृश्य बदलने लगता है। वह मध्यकालीन सामंती व्यवस्था के शिकंजे में कसने लगती है, या एकदम शिक्षाविहीन, घरों से बाहर सामाजिक अधिकारविहीन और घरों में भी पिता, पति, पुत्र पर आश्रित होने के कारण उनकी अधीनता में मिली छूट के अधिकारों का उपयोग करने की ही अधिकारिणी रह जाती है। राजघरानों से संबंधित दीक्षित, बहादुर, बुद्धिमती और अन्य व्यक्तित्वसंपन्न महिलाओं के सामने भी प्रायः दो ही मार्ग बचते हैं, अपने राज्य, अपने देश और समाज की स्वतंत्रता की रक्षा के लिए रण-क्षेत्र में लड़ना या अपनी अस्मिता की रक्षा के लिए बलिदान हो जाना।

मध्यकाल का पूरा इतिहास ऐसे उदाहरणों से भरा पड़ा है, जब पूर्वकालिक वेद-शास्त्र पढ़ने वाली, ऋचाएं लिखने वाली, शास्त्रार्थ करने वाली विदुषियों ने इस युग में आकर अस्त्र-शस्त्र से सुसज्जित हो, दुश्मनों से लोहा लिया और आन पर बन आने की स्थिति में अपनी छाती में कटार भोंक, आत्मघात कर लिया या सामूहिक चिताएं सजाकर जौहर की भेंट चढ़ गयीं।

सामान्य धारणा है कि हमारे देश में 'जौहर प्रथा' राजपूती काल की देन थी। लेकिन अनेक अध्ययनों से सिद्ध हो चुका है कि भारत में बहुत प्राचीन काल से ही यह परंपरा विद्यमान थी। हां, उसका उपयोग यदा-कदा संकटकालीन स्थितियों में ही होता था। भारत पर विदेशी हमलों के दौरान से संकटकालीन स्थितियां बढ़ने से ही इसका उपयोग बढ़ा।

ग्रीक सैनिकों ने भारतीय वीरों के आत्मोत्सर्ग से अभिभूत होकर लिखा था, 'लड़नेयोग्य सभी योद्धा पुरुष जब समरांगण में शत्रुओं का संहार करते वीरगति को प्राप्त होते थे, तो उनकी पत्नियों शत्रुओं के हाथों अपमानित होने या दासी बनने के बजाय, अपने बच्चों को हृदय से लगाकर 'जय-हर, जय-हर' का घोष करतीं प्रज्वलित अग्निशिखाओं में कूद जाती थीं। जौहर शब्द शायद 'जय-हर' की इसी ध्वनि से निकला है। जाहिर है कि सिकंदर के आक्रमण के साथ भी जौहर हुए थे और यह प्रथा मौजूद थी। भारत पर मुस्लिम हमलों के साथ चूँकि हिन्दू स्त्रियों पर अत्याचार के उदाहरण संख्या में बढ़े, इसलिए सामूहिक स्तर पर जौहर प्रथा व निजी स्तर पर सती प्रथा का उपयोग भी उसी अनुपात में बढ़ गया, जबकि पति के शव के साथ सती होने का उल्लेख रामायण व महाभारत में भी यत्र-तत्र मिलता है।

भारतीय वीरगनाओं को युद्ध-क्षेत्र में लड़ते, कटते-काटते देखकर विदेशी हमलावर हैरान रह जाते थे और विजित राज्य की स्त्रियों पर गड़ी उनकी लोलुप निगाह पर उनके बजाय, उनकी चिताओं की राख पर पड़ती थी तो वे हतप्रभ और निराश होकर लौट जाते थे। कालांतर में पति की चिता के साथ उसकी विधवा पत्नी को जबरदस्ती जलाये जाने, अन्यथा समाज में विधवा के जीवन को शपित बना देने के रूप में सती-प्रथा ने एक सामाजिक बुराई का रूप ले लिया हो, उसका प्रारंभ एक बुराई-रूप में नहीं, स्त्रीत्व की अस्मिता को हर कीमत पर बचाये रखने की गरिमा के साथ हुआ था। सचमुच मारना आसान है, मरना कठिन। भारत में प्राचीन संतों से लेकर महात्मा गांधी तक यही परंपरा चली आयी है। बाद की विकृति को अलग करके देखें तो क्या यह प्रथा भी इसी सीख की परिणति नहीं थी? इस सदी के पूर्वार्ध में भारत-विभाजन के दंगों के समय भी कई जगह अपहरणकर्ताओं के चंगुल से बचने के लिए भारतीय स्त्रियों द्वारा जब ऐसे ही आत्मघाती तरीके अपनाये गये तो देखकर अंग्रेज पर्यवेक्षक भी कम हतप्रभ नहीं हुए थे।

ईसा पूर्व 327 में भी सिंध पर एक भारी यूनानी हमला हो चुका था, जिसमें अस्सी हजार सिंधी वीरों ने आहुति दी थी। पर भारत पर अरब व मुस्लिम हमलों का लंबा सिलसिला शुरू होता है, सन् 712 से, जब मुहम्मद बिन कासिम एक बड़ी सेना लेकर सिंध पर चढ़ आया था। उस समय कुछ स्थानीय लोगों के विश्वासघात से सिंध का अंतिम हिंदू शासक दाहरसेन मारा गया। किले पर कब्जा करने के बाद हमलावरों ने सैकड़ों निर्दोष स्त्री, पुरुषों को मौत के घाट उतार दिया। मर्दों को तोड़कर इबादतगाहों में बदल दिया गया। राजा दाहरसेन की मृत्यु के बाद उनकी पत्नी महारानी लाडी बाई ने नेतृत्व संभाला, पर देशद्रोहियों के कारण सफल नहीं हुई। अपना अंत समय देख, उन्होंने महल की अन्य स्त्रियों के साथ अग्नि-समाधि ले ली।

दाहरसेन की दो पुत्रियां-राजकुमारी सूर्या और परमाल किसी तरह बचकर निकल जाने वाली थीं कि कुछ देशद्रोहियों ने इनाम के लालच में दुश्मनों को उनका पता बता दिया। दोनों बहनों ने मुठभेड़ में कई अरब सैनिक मार गिराये। फिर भी अंत में पकड़कर बांध ली गयीं और उन्हें भी लूट के माल के साथ, बतौर नजराने, खलीफा के पास भेज दिया गया। दोनों वीर कुमारियों ने अपने देश की मिट्टी उठाकर एक-एक चुटकी अपने-अपने पल्लू से बांधी और आपस में सलाह करके बचने व प्रतिशोध लेने की योजना बना ली। खलीफा के सामने पेश होने पर लड़कियों ने युक्ति से झूठ गढ़ा कि मुहम्मद बिन कासिम ने हमारे साथ जो किया, उससे अब हम आपसे शादी करने लायक नहीं रहीं। वह स्वयं शासक बनना चाहता है। इसीलिए उसने हमें अपवित्र करके आपके पास भेजा है। सुनकर खलीफा क्रुद्ध हुआ। उसने मुहम्मद बिन कासिम को मरे बैल की खाल में जिंदा सी देने का हुक्म दिया। जब मुहम्मद बिन कासिम से यह बदला ले लिया गया, तब दोनों लड़कियों ने खलीफा को सच बात बता दी। पर इसके पहले कि उन्हें घोड़ों की पूंछ से बांधकर बगदाद की सड़कों पर घसीटे जाने का खलीफा का हुक्म अमल में लाया जाता, उन्होंने अपने बालों में छुपायी बिष-बुझी छुरियां निकालीं और अपने-अपने सीने में घुसेड़कर आत्महत्या कर ली। तब भी गिरते-गिरते उन्होंने अपने देश की मिट्टी की पुड़ियाएं खोलकर खलीफा पर उछालते हुए कहा, 'खबरदार, जो आगे कभी इस धरती की इस मिट्टी को हाथ लगाया।' तब हतप्रभ खलीफा के मुंह से केवल यही निकला था, 'वही कौम जिंदा रहती है, जो वक्त पर मरना जानती है।'

ग्यारहवीं शताब्दी की सिंध देश की ही राजनर्तकी सुंदरी चित्रलेखा की कहानी भी इससे मिलती जुलती है। पर उसने आत्मघात नहीं किया था। यवन सरदार मीर हुसैन को अपने गुणों से प्रभावित करके उसे अपने भाई शहंशाह शहाबुद्दीन से बगावत करने के लिए उकसाया था और फिर उसके साथ गुपचुप अपने देश-भारत लौट आयी थी। तब मीर हुसैन के मुंह से फूटे अल्फाज भी थे, 'वाह रे हिन्दुस्तान, तू ही अकेला ऐसा देश है, जो ऐसी औलादें पैदा कर सकता है। भारत की असली संपदा वह नहीं, जो मेरे भाई ने लूटी। उसकी असली संपदा है, उसका आत्मज्ञान और उसकी सभ्यता-संस्कृति।'

फिर भारत पर एक के बाद एक मुस्लिम हमले, मुगल राज्य का विस्तार और आनबान के साथ राजपूती मुकाबले। राजपूताना में ही नहीं, दक्षिण भारत, असम, महाराष्ट्र आदि अन्य जगहों पर भी ऐसी कहानियां बिखरी पड़ी हैं। इसके बाद कहीं-कहीं फ्रांसीसी, पुर्तगाली व लगभग पूरे भारत में अंग्रेज शासकों की कूट-चालों से भरी राज्य-विस्तार की योजनाएं और दमन अत्याचार की कहानियां। इस सारी अवधि का इतिहास भारतीय वीरगनाओं की शौर्य एवं साहस की गाथाओं और शहादत की अद्भुत मिसालों से भरा पड़ा है।

1857 में भारत भूमि पर अंग्रेजी शासन की शुरुआत से लेकर 1947 में इस देश की आजादी तक की लड़ाइयों, और कुरबानियों की पूरी कहानी यहां देना संभव नहीं है। अतः यहां इससे पूर्वकाल की एक संक्षिप्त झलक भर दी गई है। इतिहास के सभी पाठक असीम साहस और बहादुरी की इन कहानियों से परिचित हैं। विस्तार-भय से इन सबके विवरण में जाना यहां अपेक्षित भी नहीं है।

पर एक बात की ओर ध्यान दिलाना आवश्यक है कि ये उस मध्यकाल की कहानियां हैं, जब भारतीय स्त्रियों के निजी अधिकार लगभग नहीं के बराबर रह गये थे। वे न शिक्षित थीं, न स्वतंत्र। सतीत्व की धारणा तब तक इतना जोर पकड़ चुकी थी कि पति के बिना स्त्री का न कोई अस्तित्व था, न गति, न विशेष सामाजिक सुरक्षा ही। पर इन परतंत्र स्त्रियों (रानियां, राजकुमारियां भी कहां स्वतंत्र थीं?) के स्वतंत्रचेता संस्कार जातीय और राष्ट्रीय गौरव से इतने गहरे स्तर पर जुड़े थे कि अपनी जातीय, राज्याय और राष्ट्रीय स्वतंत्रता के लिए वे बड़े-से-बड़ा बलिदान करने के लिए तत्पर रहती थीं

सामान्य अर्थ में शिक्षित न होते हुए भी वे धर्मनीति से लेकर समाजनीति, राजनीति, कूटनीति, रणनीति में निपुणता प्राप्त करती थीं और समय पर कुशल शासन-संचालन से लेकर कुशल सैन्य-संचालन तक करती थीं। अस्त्र-शस्त्र से सज्जित हो युद्ध भूमि में दुश्मनों के छक्के छुड़ाती थीं और हारकर दुश्मन के हाथ पड़ने या दासत्व का अपमानपूर्ण जीवन जीने के बजाय, उसी शान से, उसी बहादुरी से मौत को भी गले लगा लेती थीं। यही नहीं, ये 'सती स्त्रियां' समय पर दुश्मन के हाथ खेलने, अपने देश या राजा के साथ विश्वासघात करने और देश-रक्षार्थ लड़ने से कतराने या युद्ध-भूमि में कायरता से पीठ दिखाने पर अपने प्रेमी, अपने पति तक को नहीं बखशाती थीं, भले ही उसे मारकर अपने सीने में भी कटार भोंक लें या बाद में उसकी चिता पर सती हो जायें। यानी वक्त पर जातीय और राष्ट्रीय धर्म के सामने इनका अपना पत्नी धर्म गौण हो उठता था।

प्राचीन काल से लेकर पूरे मध्य काल तक, पूर्व आधुनिक काल तक भी, हमारे यहां निजी अधिकारों के लिए अपने पतियों, भाइयों से लड़ने की मिसालें नहीं के बराबर हैं। अपने ही पुरुषों के खिलाफ स्त्रियों की सामूहिक लड़ाइयां या आंदोलन तो बिल्कुल नहीं, लड़ाइयां हैं-देश-समाज के लिए, धर्म-रक्षा के लिए, अपनी आन-बान, अस्मिता की रक्षा के लिए। और इसके लिए बलिदान करना पड़े तो निजी सुखों का बलिदान, पति-बच्चों तक का बलिदान और अपनी जान का बलिदान। बचा क्या ?

नव-विवाहित पत्नी के संग साथ की लालसा में रणभूमि से लौटे, अपने कर्तव्य से विमुख होने वाले सरदार चंदावन की आंखें खोलने के लिए अपना सिर काटकर

भेजने वाली बूंदी की हाड़ा रानी के कृत्य की मिसाल क्या और किसी देश में मिलेगी? दासी के हाथ अपना कटा सिर भेजने से पूर्व उसके अन्तिम शब्द थे, 'क्षत्रिय पुरुष कभी डिग भी सकता है, क्षत्राणी नहीं डिगेगी। जीत पर यदि वह पुष्पशय्या की हकदार है, तो हार पर उसे मृत्युशय्या भी अपनानी चाहिए। हारे हुए कायर पति के साथ कलंक का जीवन बिताने के बजाय, मैं मरकर उसे कर्तव्य-भ्रष्ट होने से बचाना चाहूंगी।' और सचमुच चंदावत की आंखें खुल गयीं। दुबार बहादुरी से लड़कर उसने वीरगति पायी।

देवगिरि के सेनापति की लड़की वीरमती की सगाई मराठा सरदार कृष्णराव से हो चुकी थी। वह कृष्णराव को बेहद चाहती भी थी, पर आक्रमणकारी अलाउद्दीन के शत्रु-शिविर में घुसकर वहां की खबरें लाने के बहाने, राज्य के लालच में, शत्रु से मिल जाने वाले कृष्णराव पर जब उसे संदेह हुआ तो उसे रंगे हाथों पकड़कर उसका सिर काटने से भी वह नहीं चूकी। भले के मूल्य को तरजीह देना और आपसी लड़ाई में अपनी अमूल्य ऊर्जा नष्ट करने के बजाय, उसे राष्ट्रीय व जातीय अस्मिता की रक्षा के लिए काम में लाना ऐसे शाश्वत मूल्य हैं, जिन्हें उन्होंने इतिहास के हर कठिन दौर में हमें जीवित रखा, आजादी की पूरी लड़ाई में हम स्त्रियों, पुरुषों को एकजुट बनाये रखा और आज हमें समाज के हर क्षेत्र में पुरुषों के कंधों से कंधा मिलाकर काम करने, आगे बढ़ने का अवसर प्रदान किया। क्या कर्तव्य भूल, केवल अधिकार-अधिकार चिल्लाकर, अपने सम्मान की जगह अपना अहं बढ़ाकर, पश्चिमी तर्ज पर स्त्री-पुरुष टकराव वाली यौन-राजनीति चलाने के लिए अपने हर हथियार की धार तेज कर हम सदियों बाद प्राप्त इस अवसर को यूं ही हाथ से जाने देंगी? नहीं, आजादी के माने, केवल अपनी मनमानी नहीं। इसी तरह बराबरी के माने हैं, बराबरी के अवसर और आत्मविकास की वैसी ही आजादी। फिर वे स्त्रियां हों या पुरुष। इस तबके के हों या उस तबके के।

हमारी लड़ाई इसी लक्ष्य को लेकर आगे बढ़े, हमारा विद्रोह समाज के कर्णधारों को ऐसी स्थितियां लाने के लिए बाध्य करे, हमारी सुप्त शक्तियां अपनी हीन भावना दूर करने, अपनी आत्मसंपन्नता बढ़ाने के लिए जागें-जागकर समाज से विषमता मिटाने के लिए अग्रसर हों, आसुरी प्रवृत्तियों पर कहकर बनकर टूटें और जरूरत पर अयोग्य, भ्रष्ट व्यक्तियों को हटाकर स्वयं समाज नियंता बनें, यह वक्त का तकाजा है।

यह शक्ति हम अपने अतीत की अच्छाइयों से, इतिहास की भूलों से, वर्तमान के अनुभव से प्राप्त कर सकें-इसलिए प्राचीन विद्रोहों और मध्यकालीन लड़ाइयों को तथा दासता मुक्ति और स्वराज्य-प्राप्ति के लिए किये गये लंबे अनवरत सह-संघर्ष को दर्शाने का यही मात्र उद्देश्य है।



भारतीय संस्कृति में गुरु शिष्य परम्परा

- आर. के. श्रीवास्तव

भारतीय संस्कृति में गुरु शिष्य के सम्बन्धों का जो उत्कृष्ट एवं विकसित स्वरूप विद्यमान है वह विश्व के किसी अन्य संस्कृति में दृष्टिगोचर नहीं होता। यह श्रेष्ठता अकारण नहीं है। यह गुरु में पाये जाने वाले गुण एवं शिष्यों में उनका विकास करने की क्षमता के कारण है। गुरु ज्ञान, त्याग, परोपकार, न्याय परायणता, सहनशीलता आदि गुणों का भंडार है। इसी कारण उसकी महिमा का वर्णन प्राचीन साहित्य एवं इतिहास में स्थान-स्थान पर मिलता है। भारतीय संस्कृति में जिस गुरु की संकल्पना की गई है वह जीविका के साधन के रूप में केवल पुस्तकीय ज्ञान देने वाला वर्तमान काल का अध्यापक नहीं अपितु दिव्य अध्यात्मिक शक्तियों से सम्पन्न विशिष्ट व्यक्ति होता है। इसी शक्ति के प्रभाव से गुरु अपने शिष्य को न केवल ज्ञान से परिपूर्ण बनाते थे अपितु उसे संस्कारित भी करते थे। उसके फलस्वरूप उनमें नैतिक मूल्यों के प्रति आदर, आचारण की शुद्धता एवं चारित्रिक पवित्रता का विकास होता था तथा उसके जीवन में उन्नति का मार्ग प्रशस्त होता था। उनके अन्दर समाज के प्रति कर्तव्य की भावना जाग्रत होती थी।

अथर्ववेद के प्रथम सूत्र में आचार्य अर्थात् गुरु को वाचस्पति कहा गया है अर्थात् जिसे अपनी वाणी पर पूर्ण अधिकार है। गुरु का पद आस्था एवं श्रद्धा से युक्त माना गया है। गुरु शब्द में 'ग' सिद्धि का सूचक है व 'र' दुःखों का हरण करने वाला है। 'उ' वास्तव में विष्णु का रूप है। इस प्रकार इन तीनों से मिलकर गुरु शब्द ही परम गुरु का वाचक है। उसमें सत्य-असत्य, पाप-पुण्य, कुमति-सुमति को स्पष्ट करने की सामर्थ्य है। इसी कारण गुरु की तुलना परब्रह्म से की गई है।

गुरुर्विष्णु गुरुर्ब्रह्म गुरुर्देव महेश्वरा।

गुरु साक्षात् परब्रह्म तस्मै गुरुवे नमः।

गुरु केवल ब्रह्मा, विष्णु, महेश ही नहीं। वह तो इनसे भी ऊपर परब्रह्म है। अतः ऐसे गुरु को नमस्कार है।

गुरु के साथ साथ शिष्य भी उसी प्रकार गुणवान होते थे। इसका कारण था कि बारह वर्ष तक उन्हें गृह शिक्षा दी जाती थी जिसमें सदाचार, विनय, सहनशीलता,

बड़ों के प्रति आदर की भावना, आज्ञाकारिता आदि गुणों का विकास होता था। इसके बाद उपनयन संस्कार सम्पन्न किया जाता था व बालक गुरुकुल में प्रवेश करता था। वहां उसके ऊपर आश्रम की अनुशासन प्रणाली लागू होती थी जिसका पालन वह स्वेच्छा से करता था। वह गुरु की आज्ञा का पूर्ण रूप से पालन करता था। उसके अन्दर जिन गुणों की अपेक्षा की जाती थी वह निम्न पंक्तियों से स्पष्ट होता है।

काक चेष्टा वकोध्यानम् स्वान निद्रा तथैवच।

स्वल्पाहारी, गृहं त्यागी, विद्यार्थी पंच लक्षणम्।

अर्थात् विद्यार्थी के अन्दर पांच गुण होने चाहिये उसमें कौवे की भाँति चेष्टा, बगुले की भाँति ध्यान, कुत्ते की भाँति नींद, कम भोजन करने वाला तथा पारिवारिक मोह से विमुक्त होना चाहिये।

शिष्य गुरु के साथ रहकर शिक्षा ग्रहण करते थे। ऐसे स्थान को गुरुकुल या आश्रम कहा जाता था। ये गुरुकुल सामाजिक जीवन से अलग प्रकृति के सुरम्य एवं शान्त वातावरण में स्थापित किये जाते थे। आश्रम में गुरु अपने परिवार के साथ रहता था। गुरु की पत्नी गुरु माता कहलाती थी व सभी शिष्य उनका भी आदर करते थे। गुरु का जीवन शिष्य के लिए आदर्श था। वे गुरु के गुणों को अपने जीवन में ढालने का प्रयत्न करते थे। गुरु शिष्य से पुत्र की तरह व्यवहार करते थे। इस दृष्टि से उन्हें शिष्यों का आध्यात्मिक पिता भी कहा जाता था। वे शिष्यों में भेदभाव नहीं करते थे व सबके साथ समान व्यवहार करते थे।

गुरुकुल में शिक्षा का स्वरूप क्या हो तथा उसका प्रबंधन कैसे हो, इसका निर्णय गुरु ही करता था। इसके लिए वह स्वतंत्र था। इसमें राज्य शक्ति या समाज शक्ति का कोई हस्तक्षेप नहीं होता था। पाठयक्रम की दृष्टि से छात्रों को वेद, उपनिषद् पुराण आदि धार्मिक विषयों के अतिरिक्त गणित, दर्शन, राजनीति शास्त्र, अर्थशास्त्र, कृषि विज्ञान, आयुर्वेद एवं ज्योतिष आदि लौकिक विषय भी पढ़ाये जाते थे। इस व्यवस्था का प्रमुख आर्थिक स्रोत भिक्षाटन था। शिक्षा प्राप्त करने वाले सभी विद्यार्थी समीपवर्ती ग्रामों व नगरों में जाकर भिक्षाटन करते व उससे प्राप्त सामग्री का उपयोग आश्रम द्वारा किया जाता था। भिक्षा देने से इंकार करना पाप माना जाता था। आश्रम का जीवन अत्यन्त सादा व सरल था। इन आश्रमों की आय का दूसरा स्रोत गुरु दक्षिणा थी। प्रत्येक छात्र शिक्षा समाप्ति के पश्चात् आश्रम छोड़ते समय अपनी इच्छा एवं सामर्थ्य के अनुसार गुरु दक्षिणा देता था। कभी कभी राजा एवं धनी लोग भी इन आश्रमों को दान करते थे।

इस प्रकार इन गुरुकुलों से वापस आने के बाद छात्र न केवल विद्वान होता था वरन् दया, करुणा मानवता, सहनशीलता, त्याग, उदारता, सत्य, प्रेम से परिपूर्ण आदर्श व्यक्ति होता था।

भारतीय संस्कृति में गुरु की अध्यात्मिक व्याख्या भी की गई है। इसके अनुसार जीवन कभी कभी बहुत उलझा मालूम पड़ता है। उसमें सुख-दुःख, आनंद-कष्ट उदारता-लालच, सत्य-असत्य आदि भरा होता है। जब हमारे जीवन में ये विपरीत भाव उत्पन्न होने लगते हैं तो इन उलझनों को सुलझाने में अपने को असमर्थ पाकर हम टूट जाते हैं। इन परेशानियों से घिरे पर हमें बुद्धिमत्ता की आवश्यकता होती है। गुरु ही यह बुद्धिमत्ता है। यदि हम ध्यान दें तो पता चलेगा कि जब हम समस्या से घिरे नहीं होते तो हमारी बुद्धि ज्यादा काम करती है। इसका कारण यह है कि वास्तव में बुद्धि तत्व तब जाग्रत होती है जब हम स्वयम् समस्याओं से फंसे नहीं होते। यदि आध्यात्मिक रूप से देखें तो गुरुक तत्व है जो हम सबके अन्दर विद्यमान है। यदि इसे जाग्रत कर लिया जाय तो उलझने स्वयं समाप्त हो जाती हैं। गुरु पूर्णमा ही वह अवसर है जब हमें यह देखना है कि जो ज्ञान हमें परमात्मा से मिला है उसका कितना उपयोग एवं किस सीमा तक इस तत्व को जाग्रत करने में किया है। ऐसा होने पर हमारे अन्दर का गुरु नम्रता एवं कृतज्ञता आदि गुणों का विकास करके हमारे जीवन में आनन्द स्वरूप परिवर्तन लाएगा।

भारतीय संस्कृति में गुरु शिष्य परम्परा एवं उत्तम शिक्षा व्यवस्था का उल्लेख अधूरा रहेगा यदि हम वर्तमान शिक्षा पद्धति की मूलभूत कमियों की पृष्ठभूमि में प्राचीन परम्परा की प्रासंगिकता पर विचार न करें। वर्तमान भारतीय शिक्षा प्रणाली की नींव ब्रिटिश काल में मैकाले ने डाली थी। इस प्रणाली ने गुरु शिष्य सम्बन्धों को पूरी तरह व्यवसायिक बना दिया। शिक्षा खरीदी जाने वाली वस्तु हो गई जिसे कोई भी व्यक्ति निर्धारित शुल्क देकर खरीद सकता है। पश्चिमी विचारधारा से प्रभावित होने के कारण वर्तमान शिक्षा प्रणाली व्यक्ति परक होती जा रही है। इसका उद्देश्य व्यक्ति का विकास करके उसे अधिक से अधिक धन अर्जित करने योग्य बनाना है। अतः शिक्षित व्यक्ति स्वार्थी होता जा रहा है। उसे दूसरे व्यक्ति या समाज की कोई चिन्ता नहीं है। इस प्रणाली में छात्र में अच्छे संस्कारों के विकास का कोई प्रयास नहीं किया जाता। उसमें नैतिक मूल्यों के संवर्धन का भी कोई प्राविधान नहीं है। वर्तमान शिक्षा प्रणाली व प्राचीन शिक्षा प्रणाली में यही मूलभूत अन्तर है। आज के शिक्षित व्यक्ति में सहृदयता, सहनशीलता, दया, करुणा, प्रेम एवं दूसरे के प्रति सम्मान की भावना का पूर्णतया अभाव दिखाई देता है। स्थिति इतनी गिरती जा रही है कि अब शिक्षा की अवधि में

ही छात्रों में इन गुणों का स्थान ईर्ष्या, द्वेष, स्वार्थ, क्रूरता, क्रोध आदि दुर्गुणों ने ले लिया है। इसके कारण स्कूल व कालेजों में छात्रों में हिंसा बढ़ रही है। कालेजों में बढ़ रही रैगिंग इसका ही परिणाम है जिसके कारण प्रतिवर्ष अनेकों छात्र काल के गाल में चले जाते हैं। इसका प्रभाव परिवार एवं विवाह संस्था पर भी पड़ रहा है। वे टूटते जा रहे हैं। ऐसा होने पर समाज छिन्न भिन्न हो जायगा। व्यवस्थित समाज के अभाव में व्यक्ति पशु या पाशविक प्रवृत्ति का हो जायगा।

प्रश्न यह है कि क्या ऐसी परिस्थिति में हमें पुनः प्राचीन गुरुकुल व्यवस्था में लौट जाना चाहिए। आज के युग में प्राचीन काल की भांति सर्वगुण सम्पन्न गुरु मिलना भी लगभग असम्भव है। अतः भौतिकरूप से वह व्यवस्था लाना उचित नहीं होगा। किन्तु हमें गुरुकुल की मूल भावना को अपना कर शिक्षा में उसका समावेश करना होगा। नैतिक शिक्षा देकर व संस्कारित करके छात्रों के अन्दर मानवीय गुणों का विकास करना होगा। इसके लिए पाठ्यक्रम में नैतिक शिक्षा का एक विषय जोड़ देने मात्र से वांछित फल प्राप्त नहीं होगा। इसकी व्यवहारिक शिक्षा देनी होगी जिससे छात्रों में वास्तविक रूप से गुणों का विकास हो। महाभारत के समय के एक उदाहरण से बात स्पष्ट होगी। गुरु द्रोणाचार्य ने अपने शिष्यों के वेद का पाठ पढ़ाया 'सत्यम् वद, धर्म चर, स्वाध्याय मा प्रमद'। दूसरे दिन सभी शिष्यों ने इसे कण्ठस्थ करके सुना दिया। जब युधिष्ठिर की बारी आई तो वे 'सत्यम् वद', 'सत्यम् वद' ही कहते रह गये। आगे नहीं सुना पाये। गुरु ने कहा 'तुम्हें इतना भी नहीं याद हो पाया।' युधिष्ठिर बोले गुरु जी पहले सत्यम् वद अर्थात् सच बोलने का अभ्यास कर लूं। उसके बाद आगे चल सकूंगा। द्रोणाचार्य बड़े प्रसन्न हुए। यह था नैतिक शिक्षा का व्यवहारिक रूप। आज हमें इसे ही विकसित करना होगा।

□

जो कायर है, जिसमें पराक्रम का नाम नहीं है, वही देव को कोसा करता है।

- वाल्मीकि

भाग्य की कल्पना मूढ़ लोग ही करते हैं और भाग्य पर आश्रित होकर वे अपना नाश कर लेते हैं। बुद्धिमान लोग तो पुरुषार्थ द्वारा ही उत्कृष्ट पद को प्राप्त करते हैं।

- योगवासिष्ठ

सांस्कृतिक परिदृश्य और नए संचार-माध्यम

- नंद भारद्वाज

आज संस्कृति को ऐसे भिन्न अर्थ और रूप में समझने और समझाने की जरूरत है कि हम अपनी खामियों और खूबियों को पहचानते हुए, अपने भावी विकास के लिए सही मार्ग चुन सकें। संस्कृति अपने पुरखों के सामूहिक इतिहास, उनकी सामाजिक-आर्थिक परिस्थितियों, उनके आचार-व्यवहार, जीवन-दर्शन, रीति-रिवाज और सामाजिक आचरण सहित अपने मौजूदा जीवन-दर्शन, रीति-रिवाज और सामाजिक आचरण सहित अपने मौजूदा जीवन-यथार्थ से अभिन्न रूप से जुड़ी हुई है। वह उस समाज की विकास प्रक्रिया के साथ ही विकसित हुई है और उसका स्वरूप निरंतर बदलता रहा है।

जिस देशकाल में हम जी रहे हैं, वहां चारों ओर-हमारे आस-पास और समूची दुनिया में-ऐसा बहुत-कुछ घटित हुआ है, जिसने हमारे अस्तित्व और आस्था को झकझोर कर रख दिया है। जीवन के जगत के बारे में हमारा अर्जित किया हुआ ज्ञान, सामाजिक आचरण और जीवन-मूल्य आज समय के कठघरे में निःशब्द खड़े हैं। यह सिर्फ एक ऐतिहासिक ढांचे के टूटने का मसला नहीं है और न ही किसी की आस्थाओं के आहत होने का प्रसंग भर, बल्कि यह उससे भी कहीं अधिक गहरा ऐसा आघात है या कि अनिष्टकारी आशंकाओं से भरा हुआ ऐसा दुःस्वप्न है, जिसने देश के धर्मनिरपेक्ष ढांचे और हमारी लोकतांत्रिक व्यवस्था के सामने कठिन चुनौतियां खड़ी कर दी हैं।

नई वैज्ञानिक प्रगति के बावजूद भारतीय समाज में आज भी परंपरागत संचार-माध्यमों का अपना महत्त्व है। दुनिया के कुछ विकसित और विकासशील समाजों में जहां परंपरागत माध्यम नए इलेक्ट्रॉनिक माध्यमों के साथ पहले जैसा स्थान बनाकर नहीं चल पा रहे हैं, इसके बहुत से कला रूप और प्रकार प्रायः लुप्त से होते जा रहे हैं, वहीं भारत में यह स्थिति काफी भिन्न है। यहां इस तथ्य को आज भी अनदेखा नहीं किया जा सकता कि इस देश के हर प्रदेश में आदिवासी संस्कृतियां हैं और उनके परंपरागत रूप आज भी उतने ही लोकप्रिय हैं। वे उन लोगों के बीच आज भी संवाद के सबसे प्रभावशाली माध्यम माने जाते हैं। ऐसे में उन माध्यमों को नजरअंदाज करके किसी नई प्रौद्योगिकी या तकनीक पर जरूरत से ज्यादा जोर देना या उसी पर निर्भर हो जाना संभव नहीं है।

भारतीय फिल्मों के अनुभव से इस बात को बेहतर ढंग से सीखा और समझा जा सकता है कि हमारी सांस्कृतिक विरासत और पारंपरिक माध्यम इस नए कला-माध्यम को लोगों के बीच लोकप्रिय बनाने में कितने कारगर और मददगार साबित हुए हैं। फिल्म मीडिया ने फिल्म की विषयवस्तु के चयन, अभिनय की कला, फिल्म निर्माण की प्रक्रिया और उसके समग्र विन्यास में नई से नई तकनीक का प्रयोग करते हुए, उसकी संगीत-रचना और प्रभाव संयोजन में इस पारंपरिक विरासत का भरभूर उपयोग किया गया है। भारतीय फिल्मों के सर्वाधिक लोकप्रिय गीत उन्हीं पारंपरिक कर्णप्रिय लोकधुनों और यहां के शास्त्रीय संगीत की ही देन रहे हैं। महानगरीय सभ्यता में पाश्चात्य संगीत की आक्रामक संध और दबाव के बावजूद व्यापक भारतीय जनमानस पर उसका कोई विशेष प्रभाव नहीं दिखाई देता, वह आज भी अपने परंपरागत शास्त्रीय संगीत और लोक-संगीत के प्रति उतना ही गहरा लगाव रखता है।

सभी भारतीय भाषाओं में नाट्य-लेखन और नाट्य-प्रदर्शन की एक सुदीर्घ परंपरा विद्यमान रही है। ये नाट्य-आयोजन जनता के बीच संवाद और संप्रेषण के प्रभावशाली माध्यम रहे हैं। हमारे इतिहास और मानवीय अनुभव का बहुत बड़ा हिस्सा इन्हीं के जरिये हम तक सुरक्षित पहुंचा है। जनसंचार का कोई भी नया माध्यम संवाद के क्षेत्र में इस विरासत की अनदेखी नहीं कर सकता।

हमारे यहां लोक-वार्ता की भी एक सुदीर्घ वाचिक-परंपरा विद्यमान रही है। भारतीय कथा-साहित्य की विपुल लोक-संपदा इसी परंपरा के माध्यम से एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी तक हस्तांतरित होती रही। न केवल कथाएं, बल्कि दर्शन, प्राकृतिक विज्ञान, समाजविज्ञान और कला-संस्कृति की गतिविधियों और उपलब्धियों का संचित और अर्जित अनुभव इसी वाचिक-परंपरा के माध्यम से संरक्षित और विकसित हो पाया है।

यूरोप में औद्योगिक क्रांति के प्रसार और एशियाई देशों में उत्तर मध्यकाल के दौरान छापेखाने की तकनीक के उद्भव के साथ ही जिस प्रभावशाली मुद्रण-माध्यम का विकास हुआ, उसने संवाद और संप्रेषण के क्षेत्र में एक नई क्रांति का सूत्रपात किया। उन्नीसवीं शताब्दी के मध्य तक आते-आते ज्ञान के हर क्षेत्र में मुद्रण-माध्यम ने अन्य सारे माध्यमों के प्रभाव और क्षमता को अपने में समेट लिया।

देश के पहले स्वाधीनता संग्राम सन् 1857 की राज्य-क्रांति के बाद तो समाचार-पत्रों, पत्रिकाओं और मुद्रित सामग्री के माध्यम से समूचे भारतीय जन-मानस में स्वाधीनता, स्वाभिमान और राष्ट्रीय भावना का प्रसार करने के लिए जिस प्रकार पारंपरिक माध्यमों और नए जनसंचार-माध्यमों, विशेषतः प्रिंट मीडिया का खुलकर

उपयोग हुआ, उसने पहली बार समूचे देश को एक सूत्र में पिरो दिया। समूचे देश में समाज सुधार और पुनर्जागरण की एक लहर-सी फूट पड़ी। देश की जनता को भी पहली बार इन माध्यमों और इनके व्यापक प्रभाव का अहसास हुआ।

राज्य-सत्ताएं यों तो हर युग में अपने समय के संचार-माध्यमों और उनके जरिये अभिव्यक्त होने वाली जन-भावनाओं पर कड़ी नजर रखती रही हैं, लेकिन राज्य-सत्ता के इस व्यवहार पर अपना प्रतिरोध दर्ज कराने का मनोबल और संगठित प्रयास इन नए माध्यमों की शक्ति जान लेने के बाद ही संभव हो पाया। इससे न केवल जनता को अपनी सामुदायिक शक्ति का बोध हुआ, उसे इन माध्यमों की सीमाओं और उनके सामने उपस्थित चुनौतियों से भी रूबरू होने का अवसर मिला। पहली बार इन माध्यमों को और उन्नत तकनीक से लैस करने और नए जनसंचार-माध्यम विकसित करने की आवश्यकता को बल मिला। इसी प्रक्रिया के तहत कालांतर में दूर-संचार, सिनेमा, रेडियो और टेलीविजन जैसे सशक्त माध्यम अस्तित्व में आए और उन्हें व्यापक जन-समर्थन भी मिला।

भारतीय सिनेमा ने अपने सफर के जहां सौ साल पूरे कर लिए हैं, एक विश्वसनीय लोक प्रसारण के रूप में आकाशवाणी ने अपने गौरवशाली सत्तर वर्ष और दूरदर्शन ने 45 वर्ष की अवस्था पार कर, अब व्यावसायिक प्रतिस्पर्द्धा वाले सैकड़ों चैनलों के बीच अपनी अलग पहचान बना ली है। गुजरे सालों में जनसंचार के इन नए माध्यमों ने क्या कुछ अर्जित और उपलब्ध किया, उसके विस्तृत ब्यौरे में न जाकर इतना ही रेखांकित करना पर्याप्त होगा कि आज जीवन का कोई भी क्षेत्र इन माध्यमों की पहुंच और उनके प्रभाव से अछूता नहीं है। उपग्रह-प्रणाली के विकास और दूर संचार के क्षेत्र में आई नई क्रांति ने आज सारी दुनिया की हलचल को समेटकर एक करिश्माई बक्से में उपलब्ध कर दिखाया है। सूचना, शिक्षण, संरक्षण और मनोरंजन का ऐसा विश्वव्यापी आयोजन इसी माध्यम के कारण संभव हो पाया है। निश्चय ही यह विज्ञान और प्रौद्योगिकी के बहुआयामी विकास का ही परिणाम है लेकिन इस विकास के साथ मानवीय सभ्यता और संस्कृति के सामने कुछ गंभीर चुनौतियां भी उठ खड़ी हुई हैं, जिनका यदि समय रहते उपचार न खोजा गया तो इसके परिणाम अत्यंत गंभीर हो सकते हैं।

यह बात हम सभी जानते हैं कि आधुनिक समाज के निर्माण में जनसंचार के इन विकसित माध्यमों की निर्णायक भूमिका रही है। आज यही माध्यम हमारी दिनचर्या को एक हद तक संचालित और नियंत्रित करते हैं। सामाजिक रूपांतरण में भी इन माध्यमों की अहम भूमिका है। यह भी कहा जाने लगा है कि 'सूचना ही शक्ति है', अर्थात् जो व्यक्ति, संस्था या समाज सर्वाधिक जानकारीयां रखता है, उसी के हाथ

में सारी शक्तियां केन्द्रित रहती हैं। यहां हम 'सूचना' को एक व्यापक अर्थ में ले रहे हैं, जिसके अनेक पहलु हैं।

आजादी के बाद हमारे देश के आर्थिक विकास में भी संचार-माध्यमों की भूमिका काफी विवादास्पद रही है। इन माध्यमों के जरिये जिस तरह का उपभोक्तावाद फैलाया गया है और जिस तरह के जीवन मूल्य समाज पर थोपे जा रहे हैं, उनका आम जनता की आवश्यकताओं और आकांक्षाओं से कोई लेना-देना नहीं रहा है। व्यवस्था के इसी रवैये के कारण उसके परंपरागत मानवीय मूल्यों के सामने गंभीर खतरे उत्पन्न हो गए हैं। तमाम तरह की गैर-जरूरी चीजों के लुभावने विज्ञापन आम आदमी को इस या उस चीज को खरीदने लिए उत्प्रेरित करते हैं, चाहे लोगों की जरूरतें और प्राथमिकताएं कुछ भी क्यों न हों। गरीबी, बेरोजगारी, जीवन की बुनियादी सुविधाओं के अभाव और सामाजिक न्याय से जुड़े सवालों पर जैसे किसी की कोई जवाबदेही ही नहीं रह गई है। जनसंचार-माध्यमों के पास भी इन्हें लेकर कोई संतुलित या संजीदा सोच विकसित नहीं हो पाई है।

सूचना और शिक्षा के साथ स्वस्थ मनोरंजन जनसंचार-माध्यमों का एक प्रमुख दायित्व माना जाता है और प्राथमिकता में इसे हमेशा तीसरे क्रम पर रखा गया था। लेकिन पिछले कुछ सालों में यह स्थिति भी उलट गई है। खासतौर से मुक्त बाजार व्यवस्था और जनसंचार के क्षेत्र में बहुराष्ट्रीय कंपनियों के दखल के कारण सारा परिदृश्य ही बदल गया है। अब इलेक्ट्रॉनिक मीडिया के विभिन्न व्यापारिक चैनलों के बीच आकाशवाणी और दूरदर्शन जैसे लोक-प्रसारण के माध्यमों को भी अपने अस्तित्व और दर्शकों पर अपनी पकड़ बनाए रखने के लिए अपनी प्राथमिकताओं के क्रम पर पुनर्विचार करने के लिए बाध्य होना पड़ा है।

व्यापारिक चैनलों ने स्वस्थ मनोरंजन की अनदेखी करते हुए, जिस तरह के उत्तेजक संगीत, नारी-देह के अमर्यादित प्रदर्शन, हिंसा बहुल धारावाहिकों और उद्देश्यहीन कार्यक्रमों का सिलसिला बढ़ाया है, उस पर यदि समय रहते न सोचा गया तो इन चैनलों की चपेट में आए मध्यवर्गीय परिवारों के टूटने और संस्कृति के क्षेत्र में फैलने वाले प्रदूषण से समाज को शायद ही कोई बचा पाए।

मैं नहीं चाहता कि मेरे घर के चारों ओर दीवारें खड़ी कर दी जाएं और खिड़कियां बंद कर दी जाएं। मैं चाहता हूँ, दुनिया के तमाम देशों की संस्कृतियों की हवाएं पूरी उन्मुक्तता से मेरी खिड़की से बहें। मेरे घर में कोई कैदखाने का धर्म नहीं चलता, लेकिन कोई हमें अपने धरातल से उखाड़ फेंके, इसे मैं अस्वीकार करता हूँ।

□

संस्कृति - दशा एवं दिशा

- डॉ० श्रीमती बसन्ती हर्ष

संस्कारजन्य व्यवहार अथवा स्वभाव को संस्कृति कहते हैं। संस्कार उन प्रभावों को कहा जाता है, जो मनुष्य तथा इतर प्राणियों के मन पर तत्देशीय तथा तत्कालीन आचार-व्यवहार, रहन-सहन तथा वातावरण द्वारा पड़ते हैं। यही कारण है कि भिन्न-भिन्न स्थानों पर रहने वाले लोगों के आचार-विचार तथा जीवन स्तर के तरीकों में भिन्नता पाई जाती है।

जब किसी देश अथवा स्थान में रहने वालों में अधिकांश व्यक्ति कुछ समान आचरण रखते हैं, तो वह आचरण उस देश अथवा काल के रहने वालों की संस्कृति कहलाती है।

आज से लगभग तेरह सौ वर्ष पूर्व चीनी यात्री ह्वेनसांग भारत आये थे। उस समय उन्होंने भारतीय संस्कृति की प्रशंसा करते हुए इसे एक ऐसा देश बताया था, जहाँ राजा व प्रजा दोनों कला, ज्ञान व विज्ञान में रुचि रखते थे। न केवल पुरुष अपितु स्त्रियाँ भी ज्ञान-विज्ञान व शास्त्रार्थ में भाग लेती थीं। उन्हें पूर्ण सम्मान प्राप्त था। देश धन-धान्य से परिपूर्ण था। अति प्राचीन रामायण काल की आदर्श संस्कृति के लक्षण महाकवि वाल्मीकि कृत रामायण में देखे जा सकते हैं।

परन्तु शनैः शनैः कालक्रम के अनुसार महाभारत काल में सांस्कृतिक मूल्यों का हास होने लगा था। वर्णाश्रम-धर्म में शिथिलता आने लगी। विद्वानों को पर्याप्त सम्मान प्राप्त नहीं होता था। स्त्री वर्ग में भी सतीत्व की वह भावना नहीं रही। जनमानस में राष्ट्र व धर्म के प्रति प्रेम पर शक्ति प्राप्ति की इच्छा हावी होने लगी। कहना न होगा कि सांस्कृतिक प्रदूषण की यह स्थिति धीरे-धीरे और भी अधिक विकराल रूप धारण करने लगी। इक्कीसवीं सदी में पहुँचते-पहुँचते आज हमारी प्राचीन सांस्कृतिक धरोहर अपने सुदृढ़ व सुन्दर स्वरूप को खोने लगी हैं। उदाहरण के रूप में आज के भारतवासियों की संस्कृति के बारे में हमें इस प्रकार लिखना पड़ेगा-बीसवीं व इक्कीसवीं शताब्दी में भारतवासियों की संस्कृति है-अपने पूर्वजों व गुरुजनों को प्रायः अज्ञानी मानना, उनका पर्याप्त मान-सम्मान न करना, धर्म-कर्म व परिश्रम से विमुख रहना, विषय-वासना को अधिक महत्व देकर उसी में आसक्त रहना, रात को देर से सोना एवं प्रातः देर से उठना, सिनेमा, नाटक आदि देखने की अधिक लालसा रखना,

चोरी, ठगी व झूठ का व्यवहार तथा इसी प्रकार की धर्म के विरुद्ध व स्वार्थ-लोलुपता की बातें ही प्रायः देखने को मिलती हैं। इस प्रकार निरन्तर नैतिक मूल्यों के पतन के कारण समाज में घोर भ्रष्टाचार-कदाचार व्याप्त हो रहा है। सामान्य जन-जीवन निरन्तर शोषण व अत्याचार की मार झेलने को मजबूर हो रहा है। संयुक्त परिवार प्रथा जीर्ण-शीर्ण अवस्था में होने के साथ-साथ पारिवारिक सम्बन्धों में दरारे पड़ने लगी हैं, जिसके फलस्वरूप बच्चे अनाथ से हो रहे हैं। पश्चात्य जीवन-पद्धति व भौतिकवादी विचारधारा के प्रभाव के कारण ही हम सांस्कृतिक पतन के कगार पर खड़े हैं। टेलिविजन तथा समाचार-पत्रों में छपे अश्लील विज्ञापनों ने समाज में विकृतियाँ पैदा की हैं जिनके कारण युवा-वर्ग की नैतिक व शारीरिक शक्ति क्षीण होने लगी है।

अब प्रश्न उपस्थित होता है कि भिन्न-भिन्न कालों में संस्कृति में परिवर्तन कैसे हुआ? वे कौन से संस्कार हैं, जिनसे लोग भिन्न-भिन्न धर्म व संस्कार वाले बन गये। यहाँ पर इतना ही कहना पर्याप्त है कि किसी देश तथा काल की संस्कृति वहाँ के प्रचलित प्रथाओं, प्रचलित शिक्षा और प्रचलित ज्ञान-विज्ञान पर निर्भर है।

पिछले एक सहस्र वर्ष तक हमारा देश विदेशी शासन के अधीन रहा है-पहले मुसलमानों के और बाद में अंग्रेजों के। इसका हमारी विशिष्ट संस्कृति पर बहुत प्रतिकूल प्रभाव पड़ा। उसी के परिणाम स्वरूप हमारी संस्कृति धीरे-धीरे अपसंस्कृति की ओर अग्रसर होकर अपनी अस्मिता से दूर होने लगी।

अब हम पुनः उस मुख्य बिन्दु पर आ जाते हैं कि आज के युग में जिन सांस्कृतिक मूल्यों का हास होने लगा है, उन्हें पुनः कैसे प्रतिस्थापित किया जाये? सांस्कृतिक प्रदूषण के कारण आज समस्त मानव समाज जिन कठिनाईयों से जूझ रहा है, उनका समाधान यही प्रतीत होता है कि देश के कौन-कौने में अपने देश की जनता तक विशेष रूप से भारतीय संस्कृति के मूल तत्वों की सम्यक् जानकारी पहुँचे। इसके लिए धर्म की पुनः स्थापना करना आवश्यक है:-

“अहिंसा सत्यमस्तेयं शौचमिन्द्रिय निग्रह
एवं सामायिकं धर्मम्।”

अर्थात् अहिंसा (हिंसा न करना), सत्य (सच बोलना) अस्तेय (अवैध रूप से धन न कमाना) शौच (अन्तरंग व बहिरंग शुद्धि) और इन्द्रियनिग्रह (इन्द्रियों को काबू में रखना) ये धर्म के पांच सामान्य नियम हैं, जिनका सबको पालन करना चाहिए।

प्रारम्भिक शिक्षा के माध्यम से ही इन उपर्युक्त सिद्धान्तों का भली-भाँति प्रचार-प्रसार हो सकता है। प्राचीन सांस्कृतिक मूल्यों को पुनः गरिमामय पद दिलाने

हेतु विभिन्न प्रकार के सामाजिक संगठन तैयार किये जायें, जिनमें सांस्कृतिक कार्यक्रमों में रूचि लेने वालों को सदस्य बनाया जाये। प्राथमिक व माध्यमिक शिक्षा के अन्तर्गत सांस्कृतिक धरोहर को अक्षुण्ण रखने हेतु शिक्षा प्रदान की जाये। राज्य सरकारों पर विभिन्न समूह दबाव बनायें कि वे प्रशासनिक कार्यक्रमों में भारतीय संस्कृति मूल्यों की उन्नति को प्रमुखता दें। विशेष रूप से महिलाओं का यह कर्तव्य है कि वे प्राचीन लोकगीत, लोक-साहित्य व संस्कृति तथा परम्परागत तीज-त्यौहारों को पुनः सांस्कृतिक उत्थान प्रदान करने हेतु आयोजित करने की पहल करें। ज्ञातव्य है कि इन परम्परागत सांस्कृतिक कार्यक्रमों के उत्थान व पतन में महिलाओं का बहुत बड़ा योगदान है। आज की शिक्षित कही जाने वाली महिलाएं प्रायः परम्परा से चले आ रहे इन सांस्कृतिक कार्यक्रमों की अवहेलना व उपेक्षा करती हैं। अतः हमें पहले महिलाओं के सोच को संशोधित करना होगा। इसके लिए बाल्यकाल से ही धर्म की शिक्षा घर से ही प्रारम्भ होनी चाहिये। धर्म के आचरण से ही अनैतिक विचारों व कार्यों को नियन्त्रित रखने की आन्तरिक शक्ति प्राप्त होती है। वेदों के अनुसार भी समस्त मानव-मात्र के कल्याण हेतु धर्म की रक्षा व धर्म के अनुसार कार्य करना आवश्यक है। कहा भी गया है-

धर्म एवं हतो हन्ति: धर्मो रक्षति रक्षित:।

अर्थात् यदि हम धर्म की रक्षा करते हैं तो धर्म हमारी रक्षा करेगा।

अतः धर्म का नाश नहीं होना चाहिये ताकि उसके फलस्वरूप हमारा भी नाश न हो।

अन्त में यही कहना होगा कि हम सबका यह परम कर्तव्य है कि सब मिलकर उपर्युक्त सिद्धान्तों का व्यावहारिक रूप से अनुशीलन करें तथा भारतीय संस्कृति को प्रदूषण के गर्त से निकालकर एक बार पुनः विश्व की श्रेष्ठतम संस्कृति के रूप में स्थायित्व प्रदान करने में सहयोगी बनें। इसी में समस्त मानव-समाज का कल्याण निहित है।



**What lies behind us and what lies before
us are tiny matters compared to what
lies within us.**

भारतीय संस्कृति के उन्नायक श्रीराम

- आचार्य चन्द्रहास शर्मा

भारतीय संस्कृति शाश्वत जीवन की वह प्रायोगिक पद्धति है जो सत्य सनातन तथा अमर जीवन का आनन्दमय मार्ग प्रशस्त करती है। इस संस्कृति की नींव सत्य, त्याग, तप, दया, दान एवं धर्ममूलक अर्थ, काम और मोक्ष तथा वर्णाश्रम की सुदृढ़ आधारशिला पर आधृत है। जीवन जीने की कला महापुरुषों के जीवन से सिखाने के लिए ही हमारी संस्कृति ने कला, साहित्य एवं संगीत के माध्यम से उनके अवदात गुणों की अवतारणा तथा अवधारणा की है। 'महाजनों येन गतः स पंथा' भारतीयता का मूल सूत्र है। जिन महापुरुषों का जीवन जन-जन के जीवन को प्रतिक्षण अनुप्रणित करता है, उनमें मर्यादापुरुषोत्तम श्रीराम तथा पुष्टिपुरुषोत्तम श्रीकृष्ण अद्वितीय हैं। गगन-मण्डल में सूर्य तथा चन्द्र की भांति ये दोनों महापुरुष विश्व संस्कृति के प्रकाशस्तम्भ हैं। इन दोनों का आविर्भाव सामान्य मनुष्य की भांति भोग और ऐश्वर्य के लिये नहीं, अपितु 'विप्र धेनु सुर संत हित लीन मनुज अवतार' अर्थात् आसुरी शक्तियों का विनाश कर देवी शक्तियों की सुप्रतिष्ठा करने के लिये हुआ है। उनका समग्र जीवन संघर्ष, त्याग और सेवा में बीता है। श्रीमद्भगवद्गीता में व्यासदेव जी महाराज ने योगेश्वर श्री कृष्णचन्द्र के श्रीमुख से अपने आविर्भाव के तीन मुख्य हेतुओं के साथ-साथ अपने चरित्र-विश्लेषण की कसौटी का भी संकेत किया है। उसको जाने बिना हम हम सामान्य बौद्धिक धरातल पर भगवान् श्री राम का चरित्र-विश्लेषण करने लगते हैं तो जैसे चींटी मणिमय भवन में भी कोई छिद्र खोजती है, उसी भांति शम्भूक वध, श्रीसीताजी का त्याग, बली का छिपकर वध करना, कामी पुरुष की तरह वन में भटकने आदि प्रसंगों को सर्वाधिक महत्त्व देकर उनके दिव्य चरित्र को अपने बुद्धि दोष से मलिन करते हैं और उनके जीवन के अनुकरणीय गुणों को गहण करने से हम वंचित रह जाते हैं। मर्यादापुरुषोत्तम श्रीराम का आविर्भाव 'परित्राणाय साधूनाम्', 'विनाशाय च दुष्कृताम्' धर्म संस्थापनार्थाय तथा सामान्य जनों को देवी शक्ति की करुणा-कृपा का विश्वास दिलाने के लिए हुआ है। उनका जन्म और कर्म दिव्य था-

अवजानन्ति मां मूढा मानुषीं तनुमाश्रितम्।

परंभावमजानन्तो मम भूतमहेश्वरम्॥९/११

प्रकृति के गुण परिणामों से परे जो दिव्य, अलौकिक और परम भाव है, उसके द्वारा ही उनके दिव्य चरित्र जीवन को अमृत प्रदान करते हैं। भगवान् श्रीराम के सम्बन्ध

में देवाधिदेव भगवान् शिव की यह कसौटी जीवन के निर्माण के लिए परम उपयोगी है-

चरित राम के सुनहुं भवानी।

तरकि न जांहि बुद्धि मन वानी।

श्री राम का जीवन चरित्र मन, वाणी और बुद्धि के विश्लेषण से परे श्रवण-मनन-निदिध्यासन और अनुभव का विषय है। हमारी बुद्धि अपने पूर्वाग्रहों और मान्यताओं के आधार पर केवल बौद्धिक विश्लेषण कर बौद्धिक विलास कर सकती है। उससे हमारे जीवन की समस्याओं का समाधान नहीं होगा। भगवान् श्रीराम का आदर्श जीवन में अनुकरणीय है। उनके सद्गुणों का विस्तारपूर्वक वर्णन करने का जिसने भी प्रयत्न किया वह स्वयं राममय हो गया। सन्तजन कहते हैं-

चरितं रघुनाथास्य शतकोटिप्रविस्तरम्।

एकैकमक्षरं पुंसां महापातकनाशनम्॥

उनके नाम का स्मरण मात्र महापातकनाशक है। नाम के एक-एक अक्षर में यह सामर्थ्य है तो उनके जीवन-चरित्र के अनुकरण से जीवन दिव्य हो जाय तो इसमें क्या संदेह है। इस सम्बन्ध में रावण और कुम्भकरण का संवाद विशेष महत्व का है। रावण परेशान है कि सीता जी उसकी ओर देखती तक नहीं। राम को युद्ध में पराजित किये बिना श्री सीता जी को अपनी अर्द्धांगिनी नहीं बनाया जा सकता। उसका भाई सलाह देता है कि इतनी सी बात के लिए युद्ध क्यों करते हैं। श्री राम का रूप रखकर सीता जी के पास जाइये, वे अनुरक्त हो जायेंगी। रावण कहता है भाई! यही तो परेशानी है कि राम के रूप का अनुकरण करने को मन बनाते ही मेरे मन से परस्त्री-संग का विचार नष्ट हो जाता है। उनके नाम और रूप में कुछ ऐसा जादू है कि मन से दुर्भावना और दुर्वासना तिरोहित हो जाती हैं-

जहां काम तहं राम नहि, जहां राम नहिं काम।

तुलसी कैसे रहि सकै, रवि रजनी एक ठांव।

श्री राम धर्म के मूर्तरूप हैं। वाल्मीकि महर्षि का यह कथन 'रामो विग्रहवान् धर्मः' धर्म के यथार्थ स्वरूप को समझे बिना श्री राम के दिव्य चरित्र को नहीं समझा जा सकता। निष्काम कर्म या समत्वबुद्धि से युक्त होकर फलाकांक्षामुक्त, कर्मयुक्त जीवन ही धर्म का स्वरूप है। 'परहित सरिस धर्म नहिं भाई।' इसी नैष्कर्म्य सिद्धि की अवस्था को परहित, परोपकार, सेवा, समत्वभाव, संतस्वभाव आदि गुणों के द्वारा व्यक्त किया गया है। सामान्य व्यक्ति का जीवन कर्मफल की श्रृंखला में आबद्ध होता है।

बिना स्वार्थ के वह किसी से प्रेम भी नहीं करता, न कुछ देता है किन्तु महापुरुष 'बिन हेतु सनेही' पददुःख द्रवित हृदय होकर लीला करते हैं। उनमें कर्म का बन्धन नहीं होता अतः फल की आकांक्षाशून्य कर्मरत होने के कारण उनके कर्म लीला कहलाते हैं। जबकि सामान्य जन के कर्म फलाकांक्षा युक्त होने से केवल कर्म कहलाते हैं। श्रीराम ने इस प्रकार कर्म करने की कला अपने गुरुदेव विश्वामित्र की यज्ञ रक्षा को जाते समयबला ओर अतिबला विद्या के अभ्यास से प्राप्त की थी तथा कुलगुरु वशिष्ठ के योगवशिष्ट के सिद्धांतों-'वासनाक्षय', 'मनोनाश' तथा 'अमनस्क योग, का अभ्यास कर विवेक, वैराग्य और समाधि के द्वारा प्राप्त की थी। इस पक्ष को जाने बिना उनके चरित्रों के अलौकिकत्व की व्याख्या सतही होगी।

श्रीराम का स्वभाव पुष्प से भी अधिक कोमल तथा वज्र से भी अधिक कठोर है। एक ओर भावना को कर्तव्य से ऊंचा स्थान देते हैं जब वे खेल में भी भरत-लक्ष्मण शत्रुघ्न को जिताने में और स्वयं हारने में आनन्द का अनुभव करते हैं। तुलसी ने ठीक ही कहा है-

राम सदा सेवक रुचि राखी।

वेद पुरान सन्त सब साखी॥

वज्र से कठोर हैं श्रीराम जब लोकरंजन के लिए अपनी प्राणप्रिया को त्यागने का निश्चय करते हैं। उनकी इस कठोरता को आज नारी जागरण युग के पक्षधर भले ही श्रीराम के चरित्र की कमजोरी कहें, पर एक आदर्श राजा के कर्तव्य की इससे उत्कृष्ट कसौटी संसार में नहीं मिलेगी। लोकमत को सर्वोपरि स्थान देने के लिए राजा को निजत्व और आत्मीयत्व का परित्याग करने का आदर्श यदि आज के पदलोलुप भ्रष्टाचारी शासक अपने जीवन में अपना लें तो भारत स्वर्ग बन सकता है। त्याग की मूर्ति श्रीराम से बढ़कर कौन होगा। सन्देश मिला कि प्रातःकाल श्रीराम का राज्यभिषेक होगा। इस समाचार से उन्हें कोई प्रसन्नता नहीं हुई। प्रातः राज्याभिषेक होने के स्थान पर जब वनगमन का आदेश मिला तो मुख पर कोई म्लानता नहीं? आज के 'राम' को अपनी कुर्सी जाती देख हार्ट अटैक हो जाता है। समचितता श्री राम के जीवन से सीखी जा सकती है-

प्रसन्नतां या न गताभिषेकतः।

तथा न मम्ले वनवासदुःस्वतः।

जो गति योग विराग जतन करि नहि पावत मुनि ज्ञानी॥

सो गति दे गीध सवरी कहं, प्रभु न बहुत जिय जानी॥

तुलसीदास सब भांति सकल सुख जो चाहसि मन मेरो।

तो भजु राम काम सब पूरन करहिं कृपानिधि तेरो॥

श्रीराम भारतीय संस्कृति के श्रेष्ठतम आदर्शों के मूर्तिमन्त स्वरूप हैं। उनके समान कोई और नहीं है। राम के समान राम ही हैं। उनकी कृपा के बिना उनके अनन्त गुणों की थाह कौन पा सकता है।

तुम्हरी कृपा तुम्हहिं रघुनन्दन।

जानत भगत भगति उर चंदन॥

तथा-

जानत तुम्हहिं तुम्हहिं होई जाई।

आज के उच्छ्रंखल समाज को मर्यादित करने के लिए श्रीराम कथा और श्रीराम का चरित्र अमोघ औषधि है। सन्त तुलसीदास दावे के साथ उद्घोषणा करते हैं-

कालधर्म नहिं व्यापहिं ताही।

रघुपति चरन प्रीति अति जाही।

हानि की जग एहि सम कछु भाई।

भजिअ न रामहिं नर तनु पाई।

जाकी कृपा लवलेस ते मतिमन्द तुलसीदास हूं।

पायो परम विश्रामु राम समान प्रभु नाहीं कहूं।



विश्वव्यापी जल संकट

- डा० आर० एस० सेंगर

एक जानकारी के मुताबिक धरती पर 29,40,00,000 क्यूबिक मीटर पानी उपलब्ध है। पृथ्वी पर अधिकतर पानी तरल अवस्था में उपलब्ध होता है, क्योंकि हमारी धरती सोलर सिस्टम की सीध में स्थित है, अतः यहां तापमान न तो इतना होता है कि पानी उबलने लगे न ही इतना कम कि वह बर्फ में बदल जाए। जब पानी जमता है तब विस्तारित होता है जबकि ठोस बर्फ पानी पर तैरती है। जल एक चक्र्रीय संसाधन है जो पृथ्वी पर प्रचुर मात्रा में पाया जाता है। पृथ्वी का लगभग 71 प्रतिशत धरातल पानी से आच्छादित है परन्तु अलवणीय जल कुल जल का करीब 3 प्रतिशत ही है। वास्तव में अलवणीय जल का एक बहुत छोटा भाग ही मानव उपयोग के लायक है।

विश्व की नदियों में प्रतिवर्ष रहने वाले 41,000 घन कि.मी. जल में से केवल 14,000 घन कि.मी. का ही उपयोग किया जा सकता है। 14,000 घन कि.मी. जल ऐसे स्थानों से गुजरता है जहां आबादी नहीं है और यदि है भी तो उपयोग करने के लिए पर्याप्त नहीं है। इस प्रकार केवल 9,000 घन कि.मी. जल का उपयोग पूरे विश्व की आबादी करती है। स्थानीय जल की उपलब्धता जनसंख्या से बहुत प्रभावित होती है। कनाडा में प्रतिवर्ष प्रति व्यक्ति जल की उपलब्धता 1,22,000 घन मीटर है जबकि माल्टा में मात्र 70 घन मीटर है। सहारा रेगिस्तान के आसपास स्थित देश और मध्य-पूर्व एशिया के देशों में जल का जबर्दस्त अभाव है। रूस, आस्ट्रेलिया, अमेरिका और भारत के कई क्षेत्रों में भी पानी की कमी है।

विशेषज्ञों के अनुसार यदि 2000 या इससे अधिक व्यक्तियों के बीच प्रतिवर्ष दस लाख घन मीटर की खपत हो तो जल की कमी हो जाती है। इतने ही जल के लिए इंग्लैंड, इटली, फ्रांस, भारत और चीन में औसतन 350 व्यक्ति हैं, जबकि ट्यूनेशिया में 2000 व्यक्ति और इज़राइल तथा सऊदी अरब में 4000 व्यक्ति हैं। नेपाल, स्वीडन, इंडोनेशिया और बांग्लादेश में प्रतिवर्ष दस लाख घन मीटर जल सौ से भी थोड़े ज्यादा और जापान में 2000 व्यक्ति इतने जल का उपयोग कर पाते हैं। उत्तरी अमेरिका में जल की वास्तविक खपत 2230 घन मीटर प्रति व्यक्ति प्रतिवर्ष, पश्चिम यूरोप के देशों में 945 घन मीटर प्रति व्यक्ति है। वर्ष 1950 में विश्व में प्रति व्यक्ति जल की औसत खपत मात्र 1000 घन मीटर प्रतिवर्ष थी, जो 1980 में बढ़कर 3600

घन मीटर हो गई।

विकासशील देशों में जल की उपलब्धता में बहुत असमानता है। अफ्रीका के लोसेथो क्षेत्र में केवल 13 प्रतिशत व्यक्तियों को पीने का साफ पानी मिलता है जबकि लीबिया में 96 प्रतिशत जनसंख्या को यह सुविधा मिली हुई है। भारत में 70 फीसदी से अधिक आबादी को पीने का पानी उपलब्ध है जबकि पराग्वे में केवल 25 फीसदी को पानी मिल पाता है। विश्व में लगभग 1.6 अरब व्यक्तियों को जो पूरी आबादी का 24 प्रतिशत है, पीने का साफ पानी नहीं मिल पाता है।

कुछ तथ्य

- हर दिन दुनिया भर के पानी में 20 लाख टन सीवेज, औद्योगिक और कृषि कचरा डाला जाता है।
- संयुक्त राष्ट्र के अनुसार हर साल हम 1500 घन किमी. पानी बर्बाद कर देते हैं। दुनिया भर में 2.5 अरब लोग पर्याप्त सफाई के बिना रह रहे हैं।
- दुनिया की आबादी के 18 फीसदी या 1.2 अरब लोगों को खुले में शौच के लिए जाना पड़ता है।
- पांच साल से कम उम्र के बच्चों की मौत का सबसे बड़ा कारण है जलजनित बीमारियां। युद्ध सहित सभी तरह की हिंसाओं से मरने वाले लोगों से कहीं ज्यादा लोग हर साल असुरक्षित पानी पीने से मर जाते हैं।
- असुरक्षित पानी से हर साल डायरिया के चार अरब मामलों में 22 लाख मौतें होती हैं। भारत में बच्चों की मौत का सबसे बड़ा कारण यह बीमारी है। हर साल करीब पांच लाख बच्चे इसका शिकार बनते हैं।
- भूजल पर आश्रित दुनिया में 24 फीसदी स्तनधारियों और 12 फीसदी पक्षी प्रजातियों की विलुप्ति का खतरा है, जबकि एक तिहाई उभयचरों पर भी तलवार लटकी है।
- 70 देशों के 14 करोड़ लोग आर्सेनिक युक्त पानी पीने को विवश हैं।
- पेय जल और इसकी साफ-सफाई पर किए जाने वाले निवेश की रिटर्न दर काफी ऊंची है। हर एक रुपये निवेश पर 3 रुपये से 34 रुपये आर्थिक विकास रिटर्न का अनुमान लगाया जाता है।
- पानी और साफ-सफाई के अभाव में अफ्रीका को होने वाला आर्थिक नुकसान 28.5 अरब डालर या सकल घरेलू उत्पाद का पांच फीसदी है।

सम्मान अर्जन हेतु प्रौढ़ भी आत्म-मंथन करें।

– डॉ० धर्मवीर सेठी

यजुर्वेद का बड़ा प्यारा, प्रसिद्ध और सारगर्भित मन्त्र है :

ओ३म् तच्चक्षुर्देवहितं पुरस्ताच्छुक्रमुच्चरत्। पश्येम शरदः शतं जीवेम शरदः शतं शृणुयाम शरदः शतं प्रब्रवाम शरदः शतमदीनाः स्याम शरदः शतं भूयश्च शरदः शतात्॥

– यजुः 36/24

अर्थात् : हे सूर्यवत् प्रकाशक परमेश्वर! आप विद्वानों के हितकारी, शुद्ध नेत्र तुल्य सबके दिखाने वाले अनादि काल से अच्छी तरह सबके ज्ञाता हैं। उस आपको हम सौ वर्ष तक ज्ञान द्वारा देखें और आपकी कृपा से सौ वर्ष तक हम जिएँ, सौ वर्ष तक सत् शास्त्रों को सुनें, सौ वर्ष तक पढ़ावें व उपदेश करें और सौ वर्ष तक दीनता रहित हों तथा सौ वर्ष से अधिक भी देखें, जिएँ, सुनें और अदीन रहें।

Let me give its English rendering also for the convenience of readers:

Lord of lords, the Illuminator of the Sun, Well-wisher of the learned men, Torch bearer to all like the pure eye, you have been well in the know of every thing since the beginning of the universe. Kindly enable us to see You through knowledge for one hundred years. **We may live upto one hundred years by your grace.** We may hear for a hundred years the truthful scriptures. We should teach and sermonise for a hundred years. We should be free from want for a hundred years. And we should continue to live, see, hear and be free from want even after one hundred years.

इस लघु वृत्त से इतना तो स्पष्ट है कि वेद-भगवान् ने मनुष्य को न्यूनतम एक सौ वर्ष तक जीने की अनुमति प्रदान की है। अब उस अवधि को कैसे जिएँ, यह मानव पर ही निर्भर करता है।

फिर भी इस लम्बी यात्रा के लिए चार पड़ाव बनाए गए हैं जिन्हें 'आश्रम' संज्ञा से जाना जाता है। जिस प्रकार एक यात्री किसी आश्रम में कुछ देर ठहर कर अगले पड़ाव के लिए चल पड़ता है उसी प्रकार 25-25 वर्षों तक के इन चार पड़ावों को

ब्रह्मचर्याश्रम, गृहस्थाश्रम, वानप्रस्थाश्रम और संन्यासाश्रम से अभिहित किया जाता है।

ब्रह्मचर्याश्रम तो 'गुरुकुल' है जहां से व्यक्ति 'स्नातक' बन कर निकलता है-लक्ष्य रहता है 'विद्योपार्जन'। ब्रह्मचारी रहते हुए ही यह सम्भव हो पाता है। 26 से 50वें वर्ष में 'गृह' में 'स्थित' रह कर प्रजनन करना अर्थात् सन्तति रूपी प्रजा का निर्माण। उसे यदि 'पितृकुल' नाम दिया जाए तो भी संगत लगेगा क्योंकि इस आश्रम में रहते हुए 'पिता' ही तो बनते हैं। गुरुकुल में रहते हुए सद्ग्रन्थ का अध्ययन कर 'पितृकुल' में पहुँच कर गुणी और श्रेष्ठ सन्तति का निर्माण। फिर समय आता है अपनी गुणी सन्तान को धीरे-धीरे गृहस्थ का जामा पहना कर स्वयं को वन के लिए प्रस्थान करने हेतु तैयार करना अर्थात् वानप्रस्थी बनने की सोच जागृत होना। मैं इसे 'ऋषिकुल' कहना उचित समझता हूँ। 50 वर्ष से 75 वर्ष की अवधि में जितना सत्संग किया जा सके उतना लाभदायक होता है। मनुस्मृति में इसकी बड़ी सुन्दर व्यवस्था दी गई है।

एवं गृहाश्रमे स्थित्वा विधिवत्स्नातको द्विजः।

वने वसेत्तु नियतो यथावद्विजितेन्द्रियः॥मनु.6/1

X X X

अग्निहोत्रं समादाय गृह्यं चाग्निपरिच्छदम्।

ग्रामादरण्यं निःसृत्य निवसेन्नियतेन्द्रियः॥ (मनु.6/4)

अर्थात् इस प्रकार स्नातक अर्थात् ब्रह्मचर्य्य पूर्वक गृहाश्रम का कर्ता द्विज अर्थात् ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य गृहाश्रम में ठहर कर निश्चिन्तात्मा और यथावत् इन्द्रियों को जीत कर वन में बसे। साङ्गोपाङ्ग अग्निहोत्र को ले के ग्राम से निकल दृढेन्द्रिय होकर अरण्य में जा बसे।

यहाँ पहुँचते-पहुँचते वह प्रौढ़ (Senior Citizen) कहलाने लगता है। परन्तु सरकार ने 60 वर्ष और उससे अधिक को ही प्रौढ़ की श्रेणी में रखा है।

तो क्या वह प्रौढ़ वानप्रस्थी (Forester ie. a dweller in the forest) बने? परन्तु आज की स्थिति तो यह है कि वन उजड़ते चले जा रहे हैं, उनका नकशा ही बदल गया है। उनके उत्पाद में बदलाव आया है। प्रौढ़ अर्थात् वरिष्ठ नागरिक की देखभाल का तरीका बदल गया है। अतः अब प्रौढ़ व्यक्ति का वन में नहीं घर में ही रहते हुए कमल के समान जीवन व्यतीत करना होगा-निर्लेप और निःस्वार्थ। उसे अब परिवार की बागडोर युवा पीढ़ी को सम्भलवानी होगी और युवा पीढ़ी का कर्तव्य होगा कि वह मनसा-वाचा-कर्मणा वरिष्ठ नागरिकों की पूरे सम्मान के साथ देख-भाल करे ताकि उन्हें जीवन-यापन में किसी प्रकार की कठिनाई न हो। प्रौढ़ व्यक्ति को अपना समय स्वाध्याय और विद्या-दान में लगाना होगा। उनका जीवन स्वतन्त्र, आत्म सम्मान

से ओत-प्रोत और समाज के लिए स्वैच्छिक सेवा में लगा रहे, यही प्रयत्न होना चाहिए।

75 से 100 वर्ष का काल प्रौढ़ के लिए 'संन्यस्त' होने का होता है। यह 'आर्य-कुल' कहलाता है। अपने अनुभवों के आधार पर केवल सत्यार्थ का प्रचार और प्रसार-

हिरण्मयेन पात्रेण सत्यस्यापिहितं मुखम्।

तत् त्वं पूषन्नपावृणु सत्यधर्माय दृष्टये॥ (ईशोपनिषद्-15)

ऐसी स्थिति पर पहुँचने के लिए प्रौढ़ व्यक्ति को योगाभ्यास, अनुशासन और धर्मानुसार आचरण करना होगा। मनु ने धर्म की बड़ी सुन्दर व्याख्या की है:-

धृतिः क्षमा दमोऽस्तेयं शौचमिन्द्रिय निग्रहः।

धीर्विद्या सत्यमक्रोधो दशकं धर्मलक्षणम्॥ (मनु. 6/92)

अपने स्वाध्याय और दीर्घ कालीन अर्जित अनुभव के आधार पर ऐसे प्रौढ़ (वरिष्ठ) नागरिक को धर्म के धैर्य, क्षमा, दमन, चोरी न करना, पवित्रता, इन्द्रियों को वश में रखना, श्रेष्ठ बुद्धि, विद्या प्राप्ति, सत्य कथन और क्रोध न करना-इन दस अंगों का निर्भीकता से पालन और प्रचार करना होगा। लोकेषणा, वितेषणा और पुत्रेषणा से निज को विरक्त करते हुए, अवकाश के समय भ्रमण करते, सत्योपदेश करते और अपनी वाणी पर नियंत्रण रखते हुए ऐसे वरिष्ठ व्यक्ति को तो कल्याणार्थ उपदेश देते हुए प्राणी मात्र को अभयदान देना होगा। इसी से ही उसका जीवन सार्थक होगा। 'चाणक्य नीति' में ठीक ही कहा गया है :

स्वदेशे पूज्यते राजा, विद्वान् सर्वत्र पूज्यते।

प्रौढ़ व्यक्ति तो अपने दीर्घकालीन अनुभवों के कारण विद्वानों की श्रेणी में ही गिना जाता है। ऐसा व्यक्ति तो समाज के लिए एक Asset और मानव संसाधन का प्रदाता होता है।

परन्तु इसके लिए उन्हें स्व. डॉ. सम्पूर्णानन्द के शब्दों में इन बुराईयों को त्यागने का प्रयत्न करना होगा : अभिमान, अवरोध, अधिकार, अतिसार, अन्तः कलह, अभिलाषा, अपरिहार्य, अतिक्रोध, अपराजित, असंयम, अविवेक, अतिक्रमण, अकर्मण्यता, आक्रोश इत्यादि। क्या संयोग है कि ये सभी नकारात्मक बुराईयाँ हिन्दी वर्णमाला के प्रथम 'अ' से आरम्भ होती हैं। 'अ' अर्थात् 'अति' - 'अति सर्वत्र वर्जयेत्।'

प्रौढ़ों के साथ समस्या यह है कि वे 'समय' का कैसे सदुपयोग करें। वह न चाहते हुए भी मुख्य धारा से अलग हो जाते हैं या फिर कर दिये जाते हैं।

समाज की इस आवश्यकता को ध्यान में रखते हुए भारत विकास परिषद् ने प्रौढ़ संस्कार शिविरों के माध्यम से प्रौढ़ व्यक्तियों को समाजोपयोगी बनाने की दिशा में पहल की है।

समाज में एक गलतफहमी यह है कि 60 के बाद की आयु के वर्ष Bonus Years होते हैं। ऐसा कहकर हम अपने ही आर्ष ग्रन्थों की वाणी को नकारते हैं जिसमें 100 वर्ष का जीवन तो मानव को प्रदान किया ही गया है। दूसरी यह कि प्रौढ़ (वरिष्ठ) तो बूढ़ा हो गया है, समाज के लिए भार स्वरूप है। याद रहे वृद्ध का तात्पर्य है वर्ध (वार्धक्य)-अनुभव जन्य ज्ञान में अग्रणी। वह तो स्वाध्यायशील, जितात्मा, सब का मित्र, इन्द्रियों को नित्य दमनशील रखने वाला, विद्या-दान करने वाला, दयालु और दीर्घकालीन जीवनानुभवों से वरिष्ठ व्यक्ति समाज की दिशा और दशा भी बदल सकते हैं। ऐसी सोच युवा-पीढ़ी को रखनी होगी क्यों कि :

न सा सभा यत्र सन्ति न वृद्धा,
वृद्धा न ते ये न वदन्ति धर्मम्।
नासौ धर्मो यत्र न सत्यमस्ति,
न तत् सत्यं यच्छलेनाभ्युपेतम्॥ - महाभारत



समस्याएं हर जीवित इंसान के साथ हैं। कुछ लोगों को गलतफहमी होती है कि कामयाब लोगों के सामने कोई समस्या नहीं होती, जबकि यह सच नहीं है। कामयाबी भी अपने साथ कुछ खास तरह की समस्याएं लेकर आती है।



अपनी समस्या को हल करने के लिए आप खुद जिम्मेदार हैं। किसी और से यह अपेक्षा मत रखिए कि वह आपकी समस्या को हल करने में मदद करेगा।



मुंशी प्रेम चन्द की पुण्य तिथि पर कलम के सिपाही के जीवन की कहानी

बकलम खुद

कथा सम्राट मुंशी प्रेमचंद के अपने जीवन की यह कहानी १९३२ में हंस के आत्मकथा अंक में प्रकाशित हुई थी।

मेरा जीवन सपाट, समतल मैदान है, जिसमें कहीं कहीं गढ़े तो हैं, पर टीलों, पर्वतों, घने जंगलों, गहरी घाटियों और खड्डों का स्थान नहीं है। जो सज्जन पहाड़ों की सैर के शौकीन हैं, उन्हें तो यहां निराशा ही होगी। मेरा जन्म सन् 1880 में हुआ। पिता डाकखाने में क्लर्क थे, माता मरीज, एक बड़ी बहन भी थीं। उस समय पिताजी शायद 20 रुपये पाते थे। 40 तक पहुंचते पहुंचते उनकी मृत्यु हो गई। यों वह बड़े विचारशील, जीवन पथ पर आंखें खोलकर चलनेवाले आदमी थे, लेकिन आखिरी दिनों में एक ठोकर खा ही गए और खुद तो गिरे ही थे, उसी धक्के में मुझे भी गिरा दिया। पंद्रह साल की अवस्था में उन्होंने मेरा विवाह कर दिया और विवाह के साल ही भर बाद परलोक सिधारे। उस समय मैं नवें दरजे में पढ़ता था, घर में मेरी स्त्री थी, विमाता थीं, उनके दो बालक थे और आमदनी एक पैसे की नहीं थी, घर में जो कुछ जमा-पूंजी थी, वह पिताजी की छह महीने की बीमारी और क्रिया कर्म में खर्च हो चुकी थी। नौकरी उस जमाने में भी इतनी ही दुष्प्राप्य थी, जितनी अब है। दौड़-धूप करके दस बारह की कोई जगह पा जाता, पर यहां तो आगे पढ़ने की धुन थी-पांव में लोहे की नहीं, अष्टधातु की बेड़ियां थीं और मैं चढ़ना चाहता था पहाड़ पर..

पांव मे जूते न थे, देह पर साबित कपड़े न थे, महंगी अलगा। स्कूल से साढ़े तीन बजे छुट्टी मिलती थी। काशी के क्विंस कॉलेज में पढ़ता था। हेडमास्टर ने फीस माफ कर दी थी। इम्तहान सिर पर था। और मैं बांस फाटक एक लड़के को पढ़ाने जाता था। जाड़ों के दिन थे। चार बजे पहुंचता था, पढ़ाकर छह बजे छुट्टी पाता था। वहां से मेरा घर देहात में पांच मील पर था। तेज चलने पर भी आठ बजे से पहले घर न पहुंच सकता था। और प्रातःकाल आठ बजे फिर घर से चलना पड़ता था नहीं तो सही वक्त पर स्कूल नहीं पहुंचता। रात को भोजन करके कुप्पी के सामने पढ़ने बैठता और न जाने कब सो जाता। फिर भी हिम्मत बांधे हुए था।

मैट्रिकुलेशन तो किसी तरह पास हो गया, पर आया सेंकेंट डिवीजन में और क्विंस कॉलेज में भरती होने की आशा न रही। फीस केवल अव्वल दरजे वालों की ही मुआफ हो सकती थी। संयोग से उसी साल हिन्दू कॉलेज खुल गया था। मैंने इस नए कॉलेज में पढ़ने का निश्चय किया। प्रिंसिपल थे-मि. रिचर्डसन उनके मकान पर गया। वह पूरे हिन्दुस्तानी वेष में थे। कुर्ता और धोती पहने फर्श पर बैठे कुछ लिख रहे थे। मेरी प्रार्थना सुनकर-आधी ही कहने पाया था-बोले कि घर पर मैं कॉलेज की बातचीत नहीं करता, कॉलेज में आओ, खैर, कॉलेज में गया। मुलाकात तो हुई, पर निराशाजनक, फीस मुआफ न हो सकती थी। अब क्या करूं। अगर प्रतिष्ठित सिफारिशें ला सकता, तो शायद मेरी प्रार्थना पर कुछ विचार होता लेकिन देहाती युवक को शहर में जानता ही कौन था।

रोज घर से चलता कि कहीं से सिफारिश लाऊं पर बारह मील की मंजिल मारकर शाम को घर लौट आता। किससे कहूं, कोई अपना पुंछत्तर न था। कई दिनों बाद एक सिफारिश मिली। एक ठाकुर इंद्रनारायण सिंह हिंदू कॉलेज की प्रबंधकारिणी सभा में थे। उनसे जाकर रोया, उन्हें मुझ पर दया आ गई। सिफारिशी चिट्ठी दे दी। उस समय मेरे आनंद की सीमा न थी, लेकिन घर पहुंचते ही मुझे ज्वर आ गया। और दो सप्ताह से पहले न हिला, नीम का काढ़ा पीते-पीते नाम में दम आ गया। एक दिन द्वार पर बैठा था कि मेरे पुरोहित जी आ गए, मेरी दशा देखकर समाचार पूछा, और तुरंत खेतों में जाकर एक जड़ खोद लाए और उसे धोकर सात दाने काली मिर्च के साथ पिसवा कर मुझे पिला दिया। उसने जादू का असर किया। ज्वर चढ़ने में घंटे ही भर की देर थी। इस औषधि ने मानो जाकर उसका गला ही दबा दिया। मैंने पंडितजी से बार-बार उस जड़ी का नाम पूछा पर उन्होंने न बताया। कहा-नाम बता देने से उसका असर जाता रहेगा।

एक महीने के बाद मैं फिर मि. रिचर्डसन से मिला और सिफारिशी चिट्ठी दिखायी, प्रिंसिपल ने मेरी तरफ तीव्र नेत्रों से देखकर पूछा-इतने दिनों कहां थे?

बीमार हो गया था?

क्या बीमारी थी?

मैं इस प्रश्न के लिए तैयार न था, अगर ज्वर बताता हूं तो शायद साहब मुझे झूठा समझें, ज्वर मेरी समझ में हल्की चीज थी, जिसके लिए इतनी लंबी गैरहाजिरी अनावश्यक थी। कोई ऐसी बीमारी बतानी चाहिए, जो अपनी कष्टसाध्यता के कारण दया को भी उभारे। उस वक्त मुझे और किसी बीमारी का नाम याद न आया। ठाकुर

इंद्रनारायण सिंह ने जब मैं सिफारिश के लिए मिला था तो उन्होंने अपने दिल की धड़कन की बीमारी की चरचा की थी, वह शब्द मुझे याद आ गया।

मैंने कहा-पैलपिटेशन ऑफ हार्ट सर..

साहब ने विस्मित होकर मेरी ओर देखा और कहा-अब तुम बिल्कुल अच्छे हो?

जी हां।

अच्छा प्रवेश पत्र भरकर लाओ।

मैंने समझा बेड़ा पार हुआ। फार्म लिया, खानेपूरी की और पेश कर दिया। साहब उस समय कोई क्लास ले रहे थे। तीन बजे मुझे फार्म वापस मिला। उस पर लिखा था, इसकी योग्यता की जांच की जाय।

यह नई समस्या उपस्थित हुई, मेरा दिल बैठ गया। अंग्रेजी के सिवा और किसी विषय में पास होने की मुझे आशा न थी, और बीजगणित और रेखा गणित से तो मेरी रूह कांपती थी। जो कुछ याद था, वह भी भूल-भाल गया था, लेकिन दूसरा उपाय ही क्या था। भाग्य का भरोसा करके क्लास में गया और अपना फार्म दिखाया। प्रोफेसर साहब बंगाली थे। अंग्रेजी पढ़ा रहे थे। वाशिंगटन इर्विन का रिपवान विंकिल था। मैं पीछे की कतार में जाकर बैठ गया। और दो ही चार मिनट में मुझे ज्ञात हो गया कि प्रोफेसर साहब अपने विषय के ज्ञाता हैं। घंटा समाप्त होने पर उन्होंने आज के पाठ पर मुझसे कई प्रश्न किए और मेरे फार्म पर संतोषजनक लिख दिया।

दूसरा घंटा बीजगणित का था। इसके प्रोफेसर भी बंगाली थे, मैंने अपना फार्म दिखाया। नई संस्थाओं में प्रायः वही छात्र आते हैं जिन्हें कहीं जगह नहीं मिलती, यहां भी यही हाल था। क्लासों में अयोग्य छात्र भरे हुए थे। पहले रेले में जो आया, वह भरती हो गया, भूख में साग-पात सभी रुचिकर होता है। अब पेट भर गया था। छात्र चुन-चुन कर लिए जाते थे। इन प्रोफेसर साहब ने गणित में मेरी परीक्षा ली और मैं फेल हो गया। फार्म पर गणित के खाने में असंतोषजनक लिख दिया।

मैं इतना हताश हुआ कि फार्म लेकर फिर प्रिंसिपल के पास न गया। सीधा घर चला आया। गणित मेरे लिए गौरीशंकर की चोटी थी। कभी उस पर न चढ़ सका। इंटरमीडिएट में दो बार गणित में फेल और निराश होकर इम्तहान देना छोड़ दिया। दस ग्यारह साल के बाद जब गणित की परीक्षा में अख्तियारी हो गई, तब मैंने दूसरे विषय लेकर आसानी से पास कर लिया। उस समय तक यूनिवर्सिटी के इस नियम ने कितने युवकों की आकांक्षाओं का खून किया, कौन कह सकता है। खैर, मैं निराश होकर

घर तो लौट आया, लेकिन पढ़ने की लालसा अभी तक बनी हुई थी। घर बैठकर क्या करता? किसी तरह गणित को सुधारूँ और फिर कॉलेज में भरती हो जाऊँ, यही धुन थी। इसके लिए शहर में रहना जरूरी था। संयोग से एक वकील साहब के लड़के को पढ़ाने का काम मिल गया। पांच रुपए वेतन ठहरा। मैंने दो रुपए में अपना गुजर करके तीन रुपए घर पर देने का निश्चय किया। वकील साहब के अस्तबल के ऊपर एक छोटी सी कच्ची कोठरी थी। उसी में रहने की मैंने आज्ञा ले ली। एक टाट का टुकड़ा बिछा दिया। बाजार से एक छोटा सा लैंप लाया और शहर में रहने लगा। घर से कुछ बर्तन भी लाया। एक वक्त खिचड़ी पका लेता आदि पढ़ा करता। पंडित रतननाथ दर का 'फिसाना आजाद' उन्हीं दिनों पढ़ा। चंद्रकांता संतति' भी पढ़ी। बंकिम बाबू के उर्दू अनुवाद, जितने पुस्तकालय में मिले, सब पढ़ डाले। जिन वकील साहब के लड़कों को पढ़ाता था, उनके साले मेरे साथ मैट्रीकुलेशन में पढ़ते थे। उन्हीं की सिफारिश से मुझे यह पद मिला था। उनसे दोस्ती थी, इसलिए जब जरूरत होती, पैसे उधार ले लिया करता था, वेतन मिलने पर हिसाब हो जाता था। कभी दो रुपए हाथ आते कभी तीन। जिस दिन वेतन के दो तीन रुपए हाथ आते, मेरा संयम हाथ से निकल जाता। प्यासी तृष्णा हलवाई की दुकान की ओर खींच ले जाती। दो-तीन आने खाकर ही उठता। उसी दिन घर जाता और दो ढाई रुपए दे आता। दूसरे दिन से फिर उधार लेना शुरू कर देता। लेकिन कभी-कभी उधार मांगने में भी संकोच होता और दिन का दिन निराहार व्रत रखना पड़ जाता।

इस तरह से चार-पांच महीने बीते, इस बीच एक बजाज से दो ढाई रुपए के कपड़े लिए थे। रोज उधर से निकलता था। उसे मुझ पर विश्वास हो गया था। जब महीने दो महीने गुजर गए और मैं रुपए न चुका सका, तो मैंने उधर से निकलना ही छोड़ दिया। चक्कर देकर निकल जाता। तीन साल के बाद उसके रुपए अदा कर सका। उसी जमाने में शहर का एक बेलदार मुझसे कुछ हिंदी पढ़ने आया करता था। वकील साहब के पिछवाड़े उसका मकान था। जान लो भैया उसका सखुन तकिया था। हम लोग उसे जानलो भैया ही कहा करते। एक बार मैंने उससे भी आठ आने पैसे उधार लिए थे। वह पैसे उसने मुझसे मेरे घर-गांव में जाकर पांच साल बाद वसूल किए। मेरी अब भी पढ़ने की इच्छा थी, लेकिन दिन दिन निराश होता जाता था। जी चाहता था कि कहीं नौकरी कर लूं, पर नौकरी कैसे मिलती है और कहां मिलती है यह न जानता था।

जाड़ों के दिन थे। पास एक कौड़ी न थी। दो दिन एक एक पैसे का चबेना खाकर काटे थे। मेरे महाजन ने उधार देने से इनकार कर दिया था, या संकोचवश मैं

उससे मांग न सका था। चिराग जल चुके थे। मैं एक बुकसेलर की दुकान पर एक किताब बेचने गया। चक्रवर्ती गणित की कुंजी थी। दो साल हुए खरीदी थी। अब तक उसे बड़े जतन से रखे हुए था।, पर आज चारों ओर से निराश होकर मैंने उसे बेचने का निश्चय किया। किताब दो रुपए की थी लेकिन एक पर सौदा ठीक हुआ। मैं रुपया लेकर दूकान से उतरा ही था कि एक बड़ी-बड़ी मूछों वाले। सौम्य पुरुष ने जो उस दूकान पर ब्रैठे हुए थे, मुझसे पूछा-तुम यहां कहां पढ़ते हो?

मैंने कहा-पढ़ता तो कहीं नहीं हूँ, पर आशा करता हूँ कि कहीं नाम लिखा लूंगा।

'मैट्रिकुलेशन पास हो?'

'जी हां।'

'नौकरी करने की इच्छा तो नहीं है?'

'नौकरी कहीं मिलती ही नहीं।'

यह सज्जन एक छोटे से स्कूल के हेडमास्टर थे, उन्हें एक सहकारी अध्यापक की जरूरत थी। अठारह रुपए वेतन था। मैंने स्वीकार कर लिया। अठारह रुपए उस समय मेरी निराश व्यथित कल्पना की ऊंची से ऊंची उड़ान से भी ऊपर थे। मैं दूसरे दिन हेडमास्टर साहब से मिलने का वादा करके चला तो पांव जमीन पर न पड़ते थे। यह 1899 की बात है। परिस्थितियों का सामना करने को तैयार था और गणित में अटक न जाता तो अवश्य आगे जाता, पर सबसे कठिन परिस्थिति यूनिवर्सिटी की मनोविज्ञान शून्यता थी जो तब और उसके कई साल बाद तक डाकू का सा व्यवहार करती थी, जो छोटे-बड़े सभी को एक ही खाट पर सुलता था। मैंने पहले 1907 में गल्पें लिखनी शुरू कीं। डॉक्टर रवीन्द्रनाथ की कई गल्पें मैंने अंग्रेजी में पढ़ी थी और उनका उर्दू अनुवाद उर्दू पत्रिकाओं में छपवाया था। उपन्यास तो मैंने 1901 ही से लिखना शुरू किया। मेरा एक उपन्यास 1902 में निकला और दूसरा 1904 में। लेकिन गल्प 1907 से पहले मैंने एक भी न लिखी। मेरी पहली कहानी का नाम था 'संसार का सबसे अनमोल रत्न' वह 1907 में जमाना में छपी। उसके बाद मैंने चार पांच कहानियां और लिखीं, पांच कहानियों का संग्रह सोजे वतन के नाम से 1909 में छपा। उस समय बंग भंग का आंदोलन हो रहा था। कांग्रेस में गर्म दल की सृष्टि हो चुकी थी। इन पांचों कहानियों में स्वदेश प्रेम की महिमा गाई गई थी।

उस वक्त मैं शिक्षा विभाग में सब डिप्टी इंस्पेक्टर था और हमीरपुर के जिले में तैतान था। पुस्तक को छपे छह महीने हो चुके थे। एक दिन मैं रात को अपनी रावटी

में बैठा हुआ था, कि मेरे नाम जिलाधीश का परवाना पहुंचा, कि मुझसे तुरंत मिलो। जाड़ों के दिन थे। साहब दौरे पर थे। मैंने बैलगाड़ी जुतवाई और रातो रात 30-40 मील तय करके दूसरे दिन साहब से मिला। साहब ने सामने सोजे वतन की एक प्रति रक्खी हुई थी। मेरा माथा ठनका। उस वक्त मैं नवाबराय के नाम से लिखा करता था। मुझे इसका कुछ कुछ पता मिल चुका था कि खुफिया पुलिस इस किताब के लेखक की खोज में है। समझ गया कि उन्होंने मुझे खोज निकाला और उसी की जवाबदेही के लिए मुझे बुलाया गया है।

साहब ने मुझसे पूछा-यह पुस्तक तुमने लिखी है?

मैंने स्वीकार किया।

साहब ने मुझसे एक एक कहानी का आशय पूछा और बिगाड़कर बोले- तुम्हारी कहानियों में सिडीशन भरा हुआ है। अपने भाग्य को बखानो कि अंग्रेजी अमलदारी में हो। मुगलों का राज्य होता, तो तुम्हारे दोनों हाथ काट लिए जाते। तुम्हारी कहानियां एकांगी हैं, तुमने अंग्रेजी सरकार की तौहीन की है, आदि। फ़ैसला हुआ कि मैं सोजे वतन की सारी प्रतियां सरकार के हवाले कर दूं और साहब की अनुमति के बिना कुछ न लिखूं, मैंने समझा, चलो सस्ते छूटे, एक हजार प्रतियां छपी थीं। अभी मुश्किल से 300 बिकी थी। शेष 700 प्रतियां मैंने जमाना कार्यालय से मंगवाकर साहब की सेवा में अर्पण कर दी।

मैंने समझा कि बला टल गई, किन्तु अधिकारियों को इतनी आसानी से संतोष न हो सका। मुझे बाद को मालूम हुआ कि साहब ने इस विषय में जिले के अन्य कर्मचारियों से परामर्श किया। सुपरीटेंडेंट पुलिस, दो डिप्टी कलेक्टर और डिप्टी इंस्पेक्टर-जिनका मैं मातहत था-मेरी तकदीर का फ़ैसला करने बैठे। एक डिप्टी कलेक्टर साहब ने गल्पों से उद्धरण निकाल कर सिद्ध किया कि इसमें आदि से अंत तक सिडीशन के सिवा और कुछ नहीं है। और सिडीशन भी साधारण नहीं, बल्कि संक्रामक। पुलिस के देवता ने कहा-ऐसे खतरनाक आदमी को जरूर सख्त सजा देनी चाहिए। डिप्टी इंस्पेक्टर साहब मुझसे बहुत स्नेह करते थे। इस भय से कि कहीं मुआमला तून न पकड़ ले उन्होंने यह प्रस्ताव किया कि वह मित्र भाव से मेरे राजनैतिक विचारों की थाह लें और उस कमेटी में रिपोर्ट पेश करें। उनका विचार था कि मुझे समझा दें और रिपोर्ट में लिख दें कि लेखक केवल कलम का उग्र है और राजनैतिक आंदोलन से उसका कोई संबंध नहीं है। कमेटी ने उनके प्रस्ताव को स्वीकार किया। हालांकि पुलिस के देवता उस वक्त भी पैतरे बदलते रहे।

सहसा कलेक्टर साहब ने डिप्टी इंस्पेक्टर से पूछा-आपको आशा है कि वह आपसे अपने दिल की बात कह देगा।

डिप्टी साहब ने कहा-जी हां उनसे मेरी घनिष्ठता है।

आप मित्र बनकर उसका भेद लेना चाहते हैं। यह तो मुखबिरी है। मैं इसे कमीनापन समझता हूं।

डिप्टी साहब अप्रतिभ होकर हकलाते हुए बोले-मैं तो हुजूर के हुक्म.. साहब ने बात काटी-नहीं, यह मेरा हुक्म नहीं है, मैं ऐसा हुक्म देना नहीं चाहता। अगर पुस्तक में लेखक का सिडीशन साबित हो सके, तो खुली अदालत में मुकदमा चलाइए, नहीं तो धमकी देकर छोड़ दीजिए, मुंह में राम बगल में छुरी मुझे पसंद नहीं।

जब यह वृत्तान्त डिप्टी इंस्पेक्टर साहब ने कई दिन पीछे मुझसे कहा, तो मैंने पूछा-क्या आप सचमुच मेरी मुखबिरी करते?

वह हंसकर बोले-असंभव, कोई लाख रुपए भी देता तो न करता। मैं तो केवल अदालती कार्रवाई रोकना चाहता था और वह रुक गई। मुकदमा अदालत में जाता तो सजा हो जाना यकीनी था। यहां आपकी पैरवी करने वाला भी कोई न मिलता, मगर साहब हैं शरीफ आदमी हैं।

मैंने स्वीकार किया-बहुत ही शरीफ।

मैं हमीरपुर में ही था कि मुझे पेचिश की शिकायत पैदा हो गई। गर्मी के दिनों में देहातो में कोई हरी तरकारी मिलती न थी। एक बार कई दिनों तक लगातार सूखी घुइयां खानी पड़ी, यों मैं घुइयों को बिच्छू समझता हूं और तब भी समझता था लेकिन न जाने क्यों कर यह धारणा मन में हो गई कि अजवाइन से घुइयां का बादीपन जाता रहता है। खूब अजवाइन जलवाकर खा लिया करता। दस बारह दिन तक कोई कष्ट न हुआ। मैंने समझा शायद बुदेलखंड की पहाड़ी जलवायु ने मेरी दुर्बल पाचनशक्ति को तीव्र कर दिया। लेकिन एक दिन पेट में दर्द शुरू हुआ और सारे दिन मैं मछली की भांति तड़पता रहा। फंकियां खाईं, पेट पर गर्म बोतल फेरी, जामुन का अर्क पिया, देहात में जितनी देवाएं मिल सकती थीं खाईं मगर दर्द कम न हुआ। दूसरे दिन से पेचिश हो गई। मल के साथ आंव आने लगा। लेकिन दर्द जाता रहा।

एक महीना बीत चुका था। मैं एक कस्बे में पहुंचा, तो वहां के थानेदार साहब ने मुझसे थाने में ही ठहरने और भोजन करने का आग्रह किया। कई दिन से मूंग की दाल खाते और पथ्य करते करते ऊब चुका था। सोचा क्या हरज है आज यहीं ठहरो भोजन तो स्वादिष्ट मिलेगा। थाने ही ही अड्डा जमा दिया। दारोगाजी ने जिमीकंद

का सालन पकवाया, मैंने एहतियात से खाया-जिमीकंद तो मैंने कवेल दो फांके खाई-लेकिन खा पीकर जब थाने के सामने दारोगाजी के फूस के बंगले में लेटा तो दो-ढाई घंटे के बाद पेट में फिर दर्द होने लगा। सारी रात और अगले दिन भर कराहता रहा। सोड़े की दो बोतलें पीने के बाद कै हुई। तो जाकर चैन मिला। मुझे विश्वास हो गया यह जिमीकंद की कारस्तानी है। घुंइयां से पहले ही मेरी कुट्टी हो चुकी थी। जब जिमीकंद से भी बैर हो गया। तब से इन दोनों चीजों की सूरत देखकर मैं कांप जाता हूँ। दर्द तो फिर जाता रहा, पर पेचिश न अड्डा जमा लिया। पेट में चौबीसों घंटे तनाव बना रहता, अफारा हुआ करता। संयम के साथ चार-पांच मील टहलने जाता, व्यायाम करता। पथ्य से भोजन करता कोई न कोई औषधि भी खाया करता। किन्तु पेचिश टलने का नाम न लेती थी, और देह भी घुलती जाती थी। कई बार कानपुर आकर दवा कराई। एक बार महीने भर प्रयाग में डाक्टरी और आयुर्वेदिक औषधियों का सेवन किया पर कोई फायदा नहीं।

तब मैंने अपना तबादला कराया। चाहता था रोहेलखंड पर पटका गया बस्ती के जिले में और हलका वह मिला जो नेपाल की तराई है। सौभाग्य से वहीं मेरा परिचय स्व. प. मन्नन द्विवेदी गजपुरी से हुआ जो डुमरियागंज में तहसीलदार थे। कभी उनके साथ साहित्य चर्चा हो जाती थी, लेकिन यहां आकर पेचिश और बढ़ गई। तब मैंने छह महीने की छुट्टी ली और लखनऊ के मेडिकल कॉलेज से निराश होकर काशी के एक हकीम से इलाज कराने लगा। तीन चार महीने बादा कुछ थोड़ा सा फायदा तो मालूम हुआ पर बीमारी जड़ से न गई। जब फिर बस्ती पहुंचा तो वही हालत हो गई। तब मैंने दौर की नौकरी छोड़ दी और बस्ती हाईस्कूल में स्कूलमास्टर हो गया। फिर यहां से तबदील होकर गोरखपुर पहुंचा। पेचिश पूर्ववत जारी रही। यहां मेरा परिचय महावीरप्रसादजी पोद्दार से हुआ, जो साहित्य के मर्मज्ञ, राष्ट्र के सच्चे सेवक और बड़े ही उद्योगी पुरुष हैं। मैंने बस्ती में ही सरस्वती में कई गल्पें छपवाई थी, पोद्दारजी की प्रेरणा से मैंने फिर उपन्यास लिखा और सेवा सदन की सृष्टि हुई। वहीं मैंने प्राइवेट बी ए भी पास किया। सेवा सदन का जो आदर हुआ उससे उत्साहित होकर मैंने प्रेमाश्रम लिख डाला और गल्पें भी बराबर लिखता रहा। कुछ मित्रों की विशेषकर पोद्दारजी की सलाह से मैंने जल चिकित्सा आरंभ की लेकिन तीन-चार महीने के स्नान और पथ्य का मेरे दुर्भाग्य से यह परिणाम हुआ कि मेरा पेट बढ़ गया और मुझे रास्ता चलने में भी दुर्बलता मालूम होने लगी। एक बार कई मित्रों के साथ मुझे एक जीने पर चढ़ने का अवसर पड़ा, और लोग धड़धड़ाते हुए चले गए पर मेरे पांव ही न उठते थे। बड़ी मुश्किल से हाथों का सहारा लेते हुए ऊपर पहुंचा। उस दिन मुझे अपनी

कमजोरी का यथार्थ ज्ञान हुआ। समझ गया, अब थोड़े दिनों का मेहमान हूँ, जल चिकित्सा बंद कर दी।

एक दिन संध्या समय उर्दू बाजार में श्री दशरथ प्रसादजी द्विवेदी, संपादक स्वदेश से मेरी भेंट हो गई। कभी-कभी उनसे भी साहित्य चर्चा होती रहती थी। उन्होंने मेरी पीली सूरत देखकर खेद के साथ कहा-बाबूजी आप तो बिल्कुल पीले पड़ गए हैं, कोई इलाज कराइए।

मुझे अपनी बीमारी का जिक्र बुरा लगता था। मैं भूल जाना चाहता था कि मैं बीमार हूँ। जब दो चार-महीने का ही जिंदगी से नाता है तो क्यों न हंसकर मरूँ। मैंने चिढ़कर कहा-मर ही तो जाऊंगा भई या और कुछ, मैं मौत का स्वागत करने को तैयार हूँ। द्विवेदी जी बेचारे लज्जित हो गए, मुझे भी अपनी उग्रता पर बड़ा खेद हुआ। यह 1920 की बात है, असहयोग आंदोलन जोरों पर था। जलियांवाला बाग हत्याकांड हो चुका था। उन्हीं दिनों महात्मा गांधी ने गोरखपुर का दौरा किया गाजी मियां के मैदान में ऊंचा प्लेटफार्म तैयार किया गया, दो लाख से कम का जमाव न था। क्या शहर क्या देहात, श्रद्धालु जनता दौड़ी चली आती थी। ऐसा समारोह मैंने अपने जीवन में कभी नहीं देखा था। महात्मा जी के दर्शनों का यह प्रताप था, कि मुझ जैसा मरा हुआ आदमी भी चेत उठा। उसके दो ही चार दिन बाद मैंने अपनी बीस साल की नौकरी से इस्तीफा दे दिया।

अब देहात में चलकर कुछ प्रचार करने की इच्छा हुई। पोद्दारजी का देहात में एक मकान था। हम और वह दोनों वहां से चले गए और चर्खे बनवाने लगे। वहां जाने के एक ही सप्ताह बाद मेरी पेचिश कम होने लगी। यहां तक कि एक महीने के अंदर मल के साथ आंव का आना बंद होगया। फिर मैं काशी चला आया और अपने देहात में बैठकर कुछ प्रचार और कुछ साहित्य-सेवा में जीवन को सार्थक करने लगा। गुलामी से मुक्त होते ही मैं एक साल के जीर्ण रोग से मुक्त हो गया।

इस अनुभव ने मुझे कट्टर भाग्यवादी बना दिया है। अब मेरा दृढ़ विश्वास है कि भगवान की जो इच्छा होती है, वही होता है और मनुष्य का उद्योग भी उसकी इच्छा के बिना सफल नहीं होता।

□

कोई शख्स तब तक नहीं हारता, जब तक कि वह अपनी दिक्कतों के लिए दूसरों को दोष देना शुरू नहीं करता।



आलोकपर्व दीपावली

- दादूराम शर्मा

मनुष्य की चिरकाल से अंधकार से लड़ने और उस पर विजय पाने की दृढ़ संकल्प-शक्ति और सतत उद्योग का स्मरण दिलाता है यह प्रकाशपर्व दीपावली। दीप प्रकाश का आदिम लघु स्रोत है। दीपावली में उसे प्रज्वलित करके अंधकार से प्रकाश की ओर बढ़ने के अपने प्रस्थान बिंदु का, उसे आधार और आश्रय देने वाली भूमि का, अपने मूल का हम स्मरण करते हैं। विद्युत् और परमाणु शक्ति (एटॉमिक एनर्जी) का आविष्कार करके हम प्रकाश और ऊर्जा के क्षेत्र में बहुत आगे बढ़ चुके हैं, फिर भी हम मिट्टी के दीये को भूले नहीं हैं अपितु हमने उसे पूरी आस्था और सम्मान के साथ अपने धार्मिक पर्वों में और अपनी दैनिक उपासना में अनिवार्य स्थान दिया है। भारतीयों के प्रत्येक शुभ कार्य दीप प्रज्वलित करके ही प्रारंभ किए जाते हैं। बहुत अधिक प्रकाश देने वाले विद्युत् बल्बों और ट्यूबलाइटों के रहते हुए भी हम दीपावली के पर्व पर मिट्टी के दीये जलाकर भगवती लक्ष्मी की आराधना करते हैं। दीपक के रूप अपनी आदिम लघुता का स्मरण हमें अपने मूल से गगनचुंबी वृक्ष की भांति जोड़े रखता है और निरहंकार बनाए रखता है। क्योंकि अहंकार पतन का कारण है, इसलिए उत्थानकामी सदैव उससे दूर रहकर अपनी विनम्र लघुता का स्मरण करते हुए उत्तरोत्तर उन्नति के सोपानों पर चढ़ता जाता है।

आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी जी के शब्दों में-“दीवाली आकर कह जाती है कि अंधकार से जूझने का संकल्प ही सही यथार्थ है। उससे जूझना ही मनुष्य का मनुष्यत्व है। जूझने का संकल्प ही महादेवता है। उसी को प्रत्यक्ष करने की क्रिया को लक्ष्मी पूजा कहते हैं।”

‘वाल्मीकीय रामायण’, ‘अध्यात्म रामायण’ और ‘महाभारत’ के वनपर्व के अनुसार क्वार के शुक्ल पक्ष की दशमी को राम ने तमोगुण और अधर्म के मूर्त विग्रह रावण का संहार किया था और इस तरह मानवता का ‘असतो मा सद्गमय’ का संकल्प साकार हुआ था। इसलिए दस दिन विजयादशमी या दशहरा का उत्सव मनाया जाता है और कार्तिक की अमावस्या को धर्म के मूर्त विग्रह रामका राज्याधिक हुआ था। राम

को पाकर जगत् की ‘तमसो मा ज्योतिर्गमय’ की प्रार्थना सफल और पूर्ण हुई थी। राम ने विजयादशमी को जयलक्ष्मी और अमावस्या को राजलक्ष्मी पाई थी, तभी से दीपों की अवली सजाकर दीपावली पर्व मनाया जाता है। इसी दिन जैन धर्म के चौबीसवें तीर्थंकर भगवान् महावीर और वैदिक धर्म के उन्नायक महर्षि दयानंद सरस्वती का महापरिनिर्वाण हुआ था और उन्होंने अमर यश शरीर पाया था।

भारतीय संस्कृति में राम को धर्म का मूर्त रूप ‘रामो विग्रहवान् धर्मः’ कहा गया है और रामनाम को सत् का, सत्य का पर्याय माना गया है। शव यात्रा में हम ‘रामनाम सत्य’ का उद्घोष करते चलते हैं। ‘राम’ अर्थात् परमात्म तत्त्व ही सत्य है, और उसका अंशभूत आत्मतत्त्व भी सत्य है, सनातन है, अमर है। राम का उलटा होता है मरा। जो मरता है वह नश्वर देह है। ‘राम नाम सत्य है’ यह उद्घोष हमें स्मरण दिलाता है कि रामनाम अमर है, आत्मा अमर है, मनुष्य का धर्म से-सत्कर्मों से अर्जित नाम अमर है। कबीर ने कितनी सटीक बात कही है-‘हम न मरें मरि है संसारा’ अर्थात् संसार मरेगा, संसार के नश्वर जड़ पदार्थ नष्ट होंगे, यह पांच भौतिक जड़ देह मरेगी किन्तु हमारी आत्मा नहीं मरेगी, क्योंकि हमको मिला जिआवनिहारा’-हमें अमर कर देने वाला रामनाम मिल गया है, धर्ममय अनश्वर यशः शरीर मिल गया है। राम का विलोम है रावण-पुष्पक विमान पर उड़नेवाला, त्रिलोक में निर्बाध संचरण करनेवाला, संपदा हथियाकर सोने की लंका के रूप में नश्वर ऐश्वर्य का संग्रह करने वाला। मरणधर्मा जड़ शरीर का अपूरणीय अनुपोषक रावण मर गया किन्तु अयोध्या के पुष्पक ऐश्वर्य-संपन्न राज्य को तिनके के समान त्यागकर वन की कंकरीली भूमि पर नंगे पैर चलने वाले दीन दुखियों के त्राता, आर्तकियों के उत्खाता, जितेंद्रिय, अपरिग्रही लोकसंग्रही राम अमर हो गए। उन्हें पाकर मानवता कृतार्थ हो गई, धर्म मूर्तिमान हो उठा, भगवत्ता साकार हो गई और इसके साथ ही मानव की ‘मृत्योमोऽमृतं गमय’ की साधना सफल हो गई, सिद्ध हो गई।

आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ने अपने ग्रंथ ‘आलोकपर्व’ के ‘आलोक पर्व की ज्योतिर्मयी देवी’ आलेख में लिखा है-मार्कंडेय पुराण के अनुसार समस्त सृष्टि की मूल भूत आद्याशक्ति महालक्ष्मी हैं। वह सत्त्व, रज और तम तीनों गुणों का मूल समवाय हैं। वही आद्याशक्ति हैं। वह समस्त विश्व में व्याप्त होकर विराजमान हैं। वह लक्ष्य और अलक्ष्य इन दो रूपों में रहती हैं। लक्ष्य रूप में यह चराचर जगत् ही उसका स्वरूप है और अलक्ष्य रूप में यह समस्त जगत् की सृष्टि का मूल कारण है। उसी से विभिन्न शक्तियों का प्रादुर्भाव होता है। दीपावली का पर्व आद्याशक्ति के विभिन्न रूपों के स्मरण का दिन है। जिन लोगों ने संसार का भरण-पोषण करने वाली वैष्णवी शक्ति

को मुख्य रूप से उपास्य माना है, उन्होंने उस आदिभूता शक्ति का नाम महालक्ष्मी स्वीकार किया है। दीपावली के पुण्यपर्व पर इस आद्याशक्ति की पूजा होती है।

यह सारा दृश्य जगत् ज्ञान इच्छा और क्रिया के रूप में त्रिपुटीकृत है। ब्रह्म की मूल शक्ति में इन तीनों का सूक्ष्म रूप में अवस्थान होगा। त्रिपुटी कृत जगत् की मूल कारणभूत इस शक्ति को 'त्रिपुरा' भी कहा जाता है। महालक्ष्मी भी यही है। ज्ञानरूप में अभिव्यक्त होने पर यह सत्त्वगुण प्रधान सरस्वती के रूप में, इच्छा रूप में, रजोगुण प्रधान लक्ष्मी के रूप में और क्रिया रूप में, तमोगुण प्रधान लक्ष्मी के रूप में उपास्य होती है। लक्ष्मी इच्छा रूप में अभिव्यक्त होती है। जो साधक लक्ष्मी रूप में आद्याशक्ति की उपासना करते हैं, उनके चित्त में इच्छा तत्त्व की प्रधानता होती है अर्थात् वह ज्ञान द्वारा चालित और क्रिया द्वारा अनुगामित होती है। 'ज्ञानपूर्वा क्रियापरा' का मतलब है कि इच्छाशक्ति की मुख्यता उपास्य है। पर पहले ज्ञान की साधना और बाद में क्रिया का समर्थन इसमें आवश्यक है। यदि उलटा हो जाए अर्थात् इच्छाशक्ति की उपासना क्रियापूर्वा और ज्ञानापरा हो जाए तो उपासना का रूप बदल जाता है। पहली अवस्था में उपास्या लक्ष्मी समस्त जगत् के उपकार के लिए होती है। उस लक्ष्मी का वाहन गरुड़ होता है। गरुड़ शक्ति, वेग और सेवावृत्ति का प्रतीक है। दूसरी अवस्था में उसका वाहन उल्लू होता है। उल्लू स्वार्थ, अहंकारप्रियता और विच्छिन्नता का प्रतीक है। लक्ष्मी तभी उपास्य होकर भक्त को ठीक-ठीक कृतकृत्य कराती है, जब उसके चित्त में सबके कल्याण की कामना रहती है। यदि केवल अपना स्वार्थ ही साधक के चित्त में प्रधान हो तो वह उल्लूकवाहिनी शक्ति की कृपा पा सकता है। फिर तो वह तमोगुण का शिकार हो जाता है। उसकी उपासना लोक-कल्याण मार्ग से विच्छिन्न होकर बंध्या हो जाती है।

दीपावली प्रकाश का पर्व है। इस दिन जिस लक्ष्मी की पूजा होती है, वह गरुड़वाहिनी है; सेवा और गतिशीलता उसके मुख्य गुण हैं। प्रकाश और अंधकार का नियत विरोध है। अमावस्या की रात को प्रयत्नपूर्वक लाख-लाख प्रदीपों को जलाकर मां लक्ष्मी के उल्लूकवाहिनी रूप की उपासना करते हैं। हम अंधकार का, समाज से कटकर रहने का, स्वार्थपरता का प्रयत्नपूर्वक प्रत्याख्यान करते हैं और प्रकाश का, सामाजिकता का और सेवावृत्ति का आह्वान करते हैं। हमें नहीं भूलना चाहिए कि यह उपासना ज्ञान द्वारा चालित और क्रिया द्वारा अनुगमित होकर ही सार्थक होती है।

“सर्वस्याद्या महालक्ष्मीस्त्रिगुणा परमेश्वरी।
लक्ष्यालक्ष्यस्वरूपा सा व्याप्त कृत्स्नं व्यवस्थिता॥”



पटेल जयन्ती पर.....

सरदार पटेल-कुछ संस्मरण

प्रियंवद

हैदराबाद देश की सबसे बड़ी रियासत थी। मुस्लिम संस्कृति का बड़ा केन्द्र रही थी। लीगी मुसलमानों के लिए उसका पाकिस्तान में मिलना अथवा स्वतंत्र रहना दोनों महत्वपूर्ण थे। इस उद्देश्य को पाने के लिए कई संगठन सक्रिय थे। इनमें 'इत्तेहाद' एक था। 'मजलिस-इ-इत्तेहाद उल-मुसलमीन' जो 1926 में स्थापित हुआ था, उसके दो प्रमुख लक्ष्य थे। (1) निजाम के समर्थन में मुसलमानों को संगठित करना और (2) हिन्दुओं का धर्म परिवर्तन करके राज्य में हिन्दू बहुमत को घटाना। धीरे-धीरे यह संगठन बहुत शक्तिशाली हो गया था। इसका उद्देश्य हैदराबाद में स्वतन्त्र मुस्लिम राज्य स्थापित करना हो गया था। कासिम रज़वी 1944 में इत्तेहाद का नेता बन गया था। रज़वी ने नाज़ी पद्धति पर दुश्मनों पर एकाएक आक्रमण करने वाला एक सैनिक दल खड़ा किया था जिसके सदस्य रजाकार कहलाते थे। सैनिक कवायद और परेड उनका दैनिक कार्यक्रम था। हैदराबाद की 80 प्रतिशत आबादी हिन्दू थी। कासिम अली के घृणा भरे और आग उगलने वाले भाषणों की हिन्दुओं में तीव्र प्रतिक्रिया हो रही थी। निजाम को कासिम रज़वी से डर लगता था। इस्लाम का हरे रंग का झंडा लाल किले पर फहराने की बातें वह निजाम से करता था। रज़वी नवम्बर 1947 में पटेल से मिला था। सरदार पटेल और कासिम रज़वी की बातचीत का एक रोचक अंश के.एम. मुंशी की पुस्तक से देखें:-

“आप हैदराबाद को आज़ाद क्यों नहीं रहने देना चाहते?” रज़वी ने पूछा।

“मैं सभी सम्भव सीमाएं लाँघ चुका हूँ। हैदराबाद के लिए मैं जितना कुछ स्वीकार कर चुका हूँ, उतना किसी भी और रियासत के लिए मैंने नहीं स्वीकारा।” सरदार ने उत्तर दिया।

“पर मैं चाहता हूँ कि आप हैदराबाद की मुश्किलों को समझें।”

रज़वी ने फिर कहा।

“मुझे कोई मुश्किल नहीं दिख रही, बशर्तों तुमने पाकिस्तान से कोई समझौता न कर रखा हो।” सरदार का उत्तर था।

“अगर आप हमारी मुश्किलों को नहीं समझेंगे तो हम झुकेंगे नहीं।”

रज़वी ने चीखते हुए कहा, “हम हैदराबाद के लिए आखिरी आदमी तक लड़ेंगे-मरेंगे।”

“अगर तुम आत्महत्या करना ही चाहते हो तो मैं तुम्हें कैसे रोक सकता हूँ।” सरकार ने बड़े सहज ढंग से कहा था।

13 सितम्बर 1948 को सुबह 4 बजे भारतीय सेना ने जनरल चौधरी की कमांड में 2580 मील लम्बी हैदराबाद राज्य की सीमा में पांच जगह से प्रवेश किया। हैदराबाद की सेना ने कुछ प्रतिरोध किया। 17 सितम्बर को शाम पांच बजे निजाम ने युद्ध विराम की घोषणा करते हुए भारतीय सेनाओं को सिकन्दराबाद में आने दिया। रजाकार संगठन पर प्रतिबन्ध लगा दिया गया। 8 सितम्बर 1948 को सिकन्दराबाद से पांच मील पहले हैदराबाद सेना के मेजर जनरल एल. एड्रूस ने चौधरी के सामने निजाम की तरफ से समर्पण कर दिया। अनुमानित रूप से इस कार्यवाही में 1200 रजाकार मारे गये और घायल हुए 450 रजाकार गिरफ्तार हुए। भारतीय सेना में 10 मृत्यु हुई। एक झील के किनारे बने गेस्ट हाउस में रज़वी पकड़ा गया। अखबारों ने प्रकाशित किया कि रज़वी दिल्ली ले जाया जाएगा और लाल किले में उसका मुकदमा चलेगा। इससे असहमत व विक्षुब्ध नेहरू व राजाजी से सहमत होते हुए पटेल ने 21 सितम्बर 1948 को नेहरू को पत्र लिखा कि लाल किला एक मामूली गुंडे और धर्मान्ध किस्म के रज़वी के मुकदमे के लिए बहुत पवित्र व ऐतिहासिक महत्व की जगह है। मैंने कल मेनन को आदेश दिए हैं कि उसे हैदराबाद में ही खत्म कर दिया जाए।

रफीक जकरिया की पुस्तक का यह अंश हमें बताएगा कि किस तरह भारतीय स्वतन्त्रता संघर्ष के इस अप्रतिम योद्धा को मुसलमान, साम्प्रदायिकता व हिन्दू संगठनों के सन्दर्भ में भी हमेशा गलत रूप से ही समझा व प्रस्तुत किया था।

‘1944 से 1949 तक पांच साल लन्दन में बिताने के बाद जब मैं लौटा तो उसके कुछ अर्से बाद ही मुझे सरदार से मिलने का सौभाग्य मिला था। सिर्फ एक बार। लन्दन में पढ़ाई के अलावा मैं कृष्णा मेनन की इंडियन लीग में, भारतीय छात्रों के प्रमुख संगठन फेडरेशन ऑफ इंडियन स्टुडेंट्स सोसायटीज इन ग्रेट ब्रिटेन में काफी सक्रिय था। फेडरेशन का उन दिनों मैं अध्यक्ष था। भारत लौटने के बाद एक दिन मुझे

मुम्बई में तत्कालीन गृहमन्त्री मोरारजी देसाई के सचिव वी.वाई टोनपे का एक पत्र मिला, जिसमें लिखा था कि भारत के उप-प्रधानमन्त्री बिड़ला हाउस, मुम्बई में मुझसे मिलना चाहते थे। 19 मई 1950 को सबेरे दस बजे का समय दिया गया था। उस दिन एक घंटे के अधिक समय तक मैं सरदार के साथ अकेला था। उनकी तबीयत ठीक नहीं थी अतः वे बिस्तर पर लेटे हुए थे। उन्होंने मुझसे हिन्दू मुसलमानों की समस्या, विशेषकर युवा मुसलमान पीढ़ी के व्यवहार के बारे में बातचीत की। उन्होंने बड़े धैर्य से मेरी बातें सुनीं और मुझे सुझाव दिया कि मैं अपने युवा साथी धर्मावलम्बियों को जिन्ना व मुस्लिम लीग द्वारा बनायी गयी, दो समुदायों को बांटने वाली दीवारों को तोड़ने की आवश्यकता समझाऊं। युवा मुसलमान वर्ग पर द्विराष्ट्र सिद्धान्त के प्रभाव से वे बहुत चिन्तित थे। मुझसे उनका आग्रह यह था कि मैं इन युवाओं को इस तरह सक्रिय करूं कि एक बार फिर वे उस भावना से अनुप्राणित हों जो बीस वाले दशक के खिलाफत आन्दोलन के दौरान थी। आज दुर्भाग्य से उस भावना का स्थान ‘शक, बुराई और शत्रुता’ ने ले लिया है। उन्होंने हिन्दू-मुसलमानों के बीच आपसी विश्वास बनाने लिए कहा ‘जो इनकी शान्ति व स्मृद्धि का एकमात्र रास्ता है।’ उन्होंने कहा था कि बहुसंख्यकों की सद्भावना ‘अल्पसंख्यकों का सर्वश्रेष्ठ कवच’ है। मुझे उम्मीद थी कि वे विभाजन में मुसलमानों की भूमिका के कारण उनसे नाराज़ एवं आक्रामक होंगे, पर वे आश्चर्यजनक ढंग से शान्त तथा सहारा देने वाली मुद्रा में थे। उनके शब्दों का मुझ पर गहरा असर पड़ा था और जब मैं वहां से लौटा तो भविष्य के प्रति अधिक आशावादी था।’

पटेल के सचिव रहे वी. शंकर ने अपने संस्मरणों में लिखा है कि एक रात दक्षिण दिल्ली की निज़ामुद्दीन औलिया की दरगाह की रक्षा के लिए पटेल भागे हुए गये थे। जब उन्हें पता चला कि कुछ बदमाशों ने उस पर कब्जा कर लिया है तो कन्धे पर शाल डालते हुए उन्होंने अपने सचिव से कहा था, ‘इससे पहले कि सन्त नाराज हो जाएं, चलो हम उनके पास चलें।’ पटेल लगभग एक घंटा वहां रहे।

21 नवम्बर 1950 के बाद से सरदार पटेल की तबीयत गिरने लगी। वे 75 वर्ष के हो गये थे। उनकी परिचर्या में दो नर्सें रखी गईं। एक दिन की ड्यूटी पर और दूसरी रात की ड्यूटी पर। 5 दिसम्बर, 1950 को सरदार पटेल को लगने लगा कि उनका अन्तकाल आ पहुंचा है। उस रात मणिबहन ने सरदार को नजीर का यह गीत गुनगुनाते हुए सुना-‘जिन्दगी का यह तमाशा चन्द रोज।’ ‘मारी नार तमारे हाथे’, ‘मन लागो मेरो और फकीरी में’ और ‘मंगल मन्दिर खोलो दयामय’ आदि अपने प्रिय गीतों को वे अक्सर गुनगुनाते रहते थे।

12 दिसम्बर, 1950 को डॉक्टरों की राय पर सरदार पटेल को बम्बई ले जाया गया। राजेन्द्र प्रसाद, नेहरू, राजगोपालाचारी, गाडगिल, घनश्यामदास बिड़ला और वी. पी. मेनन ने उन्हें हवाई अड्डे पर विदाई दी। पटेल ने विमान के द्वार के निकट कुर्सी पर बैठे-बैठे सब उपस्थित जनों को हाथ जोड़कर अन्तिम नमस्कार किया। बम्बई के दो डॉक्टर, डॉ. गिल्डर और डॉ. नाथूभाई पटेल उनके साथ ही बम्बई गये। मणिबहन साथ में ही थीं।

पटेल का विमान साढ़े चार घंटों में बम्बई पहुंच गया। दिल्ली से बम्बई की उड़ान ने उन्हें थका डाला। बम्बई में उन्हें बिड़ला हाउस में ठहराया गया। बम्बई में सरदार पटेल की हालत बिगड़ती गयी। शुक्रवार, 15 दिसम्बर, 1950 को प्रातः 3 बजे उन्हें दिल का दूसरा दौरा पड़ा। वे बेहोश हो गये। 4 घंटे बाद उन्हें कुछ होश आया। मणिबहन ने उन्हें गंगाजल में शहद मिलाकर दिया। उसी दिन प्रातः 9 बजकर 37 मिनट पर सरदार के प्राणपखेरू उड़ गये।

पटेल की मृत्यु की सूचना पर गोलवलकर भी उनकी अन्त्येष्टि में शामिल होना चाहते थे। शाम तक बम्बई पहुंचने का कोई साधन नहीं था। डी.पी. मिश्रा ने लिखा है कि मुख्यमन्त्री शुक्ला का जहाज नागपुर से बम्बई जा रहा था। गोलवलकर ने उनसे साथ ले चलने का अनुरोध किया जिससे कि वह व्यक्तिगत रूप से तथा संगठन का सम्मान भी प्रदर्शित कर सकें। गोलवलकर उनके साथ ही जहाज से बम्बई पहुंचे। पटेल की चिता पर प्रणाम करने वाले असंख्य लोग थे। राजेन्द्र प्रसाद, नेहरू, राजगोपालाचारी और दूसरे हजारों लोगों ने उन्हें भीगी आंखों से विदाई दी। उनमें गुरु गोलवलकर भी थे। चिता जलने पर सुबकते हुए नेहरू ने रोते हुए राजेन्द्र प्रसाद का सिर अपने कंधे पर रख लिया। राजाजी ने वहां कहा, “हमारी आंखों के सामने वह वायु, जल और मिट्टी में विलीन हो रहे हैं। हम उनकी राख से शान्ति व आत्मविश्वास पाते रहेंगे। उनके जैसा दूसरा हम नहीं देख सकेंगे।” जलती चिता के साथ धीरे-धीरे पटेल अपने बापू में विलीन हो गये।



योग साधना का आवश्यक सोपान-प्रत्याहार

योग का अर्थ प्रायः ही आसन एवं प्राणायाम समझ लिया जाता है। वास्तव में योग के आठ अंग हैं: यम, नियम, प्रत्याहार, आसन, प्राणायाम, ध्यान, धारणा एवं समाधि। प्रस्तुत लेख में प्रत्याहार क्या है एवं उसकी साधना क्यों आवश्यक है इसे सरल शब्दों में गहराई से समझाया गया है।

स्वविषयासम्प्रयोगे चित्तस्वरूपानुकार इवेन्द्रियाणां प्रत्याहारः। महर्षि पतंजलि प्रत्याहार की विशद विवेचना इस सूत्र के माध्यम से करते हैं। वे कहते हैं कि इंद्रियों का अपने विषयों के साथ संबंध न होने पर चित्त के स्वरूप का अनुकरण करना, उसके साथ तदाकार हो जाना ही प्रत्याहार है।

प्रति+आहार=प्रत्याहार, अर्थात् इंद्रियों का जो अपना विषय है, वही उनका मूल आहार है। आहार इंद्रियों के संबंध में प्रयुक्त होता है। इस आहार को उनसे हटा देना या उन्हें ग्रहण करने न देना ही प्रत्याहार है। इस प्रकार कहा जा सकता है कि इंद्रियों को अपने-अपने विषयों से निवृत्त करना या हटाना ही प्रत्याहार है।

महर्षि पतंजलि अध्यात्मवेत्ताओं की दुनिया के आइन्सटाइन हैं। उनकी अभिवृत्ति और दृष्टि वही है, जो एकदम विशुद्ध वैज्ञानिक मत की होती है। महर्षि पतंजलि बुनियादी तौर पर वैज्ञानिक हैं, जो नियमों की भाषा में सोचते-विचारते हैं और अपने निष्कर्षों को रहस्यमय संकेतों के स्वर में नहीं, वैज्ञानिक सूत्रों के रूप में प्रकट करते हैं। इन्हीं के कारण प्रत्याहार के संबंध में उनके सूत्र अद्भुत हैं कि प्रत्याहार है इंद्रियों का राग-द्वेष से विमुक्त हो जाना। राग-द्वेष का थम जाना एक बड़ी घटना है। योगी ही किसी बड़ी घटना को संपादित करता है और इस घटना को संपादित करने से पहले उसे सर्वप्रथम संसार और उसके परे जिस किसी से वह अनुरक्त होता है या विरक्त होता है, उन चीजों से उसे बाहर निकलना होता है। उसे अपनी इंद्रियों को इन विषयों से विमुक्त करना होता है।

प्रत्याहार सहज नहीं है और योगाभ्यासी साधक के लिए अत्यंत आवश्यक घटक भी है। योगी का संसार अपने इस संसार से भिन्न एवं जुदा होता है। उसके नीति-नियम हमारे नीति-नियमों से अलग होते हैं। उस संसार में राग-द्वेष आदि विषयों का

किंचिन्मात्र स्थान नहीं है। ये सब बातें यहां चल सकती हैं, बल्कि यहां इन्हीं का जमघट है। इंद्रियों की भोगलिप्सा से सराबोर यह जगत योगाभ्यासी साधक को गुड़ में भिनभिनाती मक्खियों के समान प्रतीत होता है। उसे अपनी इंद्रियों के इन विषयों को दूर, बहुत दूर ले जाकर चित्त के महोदधि में छोड़ देना पड़ता है। वह अपनी इंद्रियों को विषयों से इतना विमुक्त कर देता है कि फिर इंद्रियां उन विषयों की ओर उन्मुख नहीं होतीं; क्योंकि उन्हें एक नए जगत की मनोहारी झांकियां जो मिल जाती हैं। इंद्रियों को उच्चस्तरीय विषय मिल जाता है, तब वे निम्नस्तरीय विषय में विचरना एवं चिपकना छोड़ देती हैं।

इंद्रियां अपने विषय में विचरना छोड़ देती हैं तो प्रत्याहार घट जाता है। जैसे जिह्वा का विषय है स्वाद। जिह्वा का स्वादरहित हो जाना प्रत्याहार है; अर्थात् जब कोई शिकवा-शिकायत नहीं। प्रत्याहार सध जाए तो वह स्वाद के लिए नहीं भटकेंगी। वह यह नहीं तलाशेगी कि जिस भोजन में उसे स्वाद मिलता है, वही मिले। जीवन की आधी से अधिक ऊर्जा तो इसी में व्यय हो जाती है कि क्या खाना और कब खाना है, कितना खाना है और क्यों खाना है। परन्तु जब जिह्वा का प्रत्याहार सध जाता है तो स्वाद गौण हो जाता है और स्वास्थ्य प्रमुख। बात उलट जाती है, इसीलिए तो इसे प्रति आहार (प्रत्याहार) कहते हैं, मतलब कि ठीक उलटी चाल।

प्रत्याहार आसक्ति से रहित होना है। आसक्ति हमें बांधती है और यह जितना बांधती है, उतना ही सताती भी है। आसक्ति हट जाए तो इंद्रियां स्थिर होन लगती हैं, फिर मन भी शांत होने लगता है। आसक्ति के मोहपाश ने राजा भर्तृहरि को गहरा बांध रखा था। विवेकवान् मेधावान् भ्राता विक्रमादित्य के तमाम यत्नों के बावजूद राजा भर्तृहरि पिंगला के रूप-लावण्य में इस कदर खो गए थे कि उन्हें परम सुन्दरी पिंगला के अलावा कुछ सूझता ही नहीं था। उनकी इंद्रियां अपने विषयों में सघन रस से ओत-प्रोत थीं। काम वासना के इस नशे ने उनकी इंद्रियों को उन्मत्त बना दिया था और इंद्रियां भला कभी अपने विषयों से तृप्त हुई हैं। यह तो ऐसी आग है, जो सतत भड़कती रहती है। राजा भर्तृहरि इंद्रियों की इसी आग में झुलस रहे थे।

महारानी पिंगला के चंचल मन के एक चारित्रिक दोष ने राजा भर्तृहरि को इतना क्षुब्ध किया कि उनका मन अपने विषय से विमुख हो गया। वे गोरखनाथ के शिष्य बन गए, परन्तु गोरखनाथ ने उन्हें प्रत्याहार सधने से पूर्व शिष्य स्वीकार नहीं किया। उन्होंने राजा का प्रत्याहार नहीं सधा था। वे अनुराग से विमुख हुए थे, द्वेष से नहीं। उन्हें दोनों से मुक्त होना था, पर इस साधना में वे पागल सा उन्मत्त होकर जंगलों में भटकते थे। पिंगला को मां नहीं मान पा रहे थे अतः उनका प्रत्याहार नहीं सध पा रहा

था, परन्तु गुरु गोरखनाथ की कृपा से राजा भर्तृहरि योगी भर्तृहरि बने। उनका प्रत्याहार सधा और उन्होंने पिंगला में माता भगवती का रूप देख लिया।

प्रत्याहार की साधना आसान नहीं, परन्तु इसका कोई विकल्प भी नहीं है।

पतंजलि ने इसकी तकनीक दी है कि कैसे प्रत्याहार को साधा जाए। वे कहते हैं कि वितर्कवाद में प्रतिपक्ष की भावना अर्थात् इंद्रियां विषय में आसक्त हों तो उनकी धैर्यपूर्वक काउन्सिलिंग करना चाहिए। विधेयात्मक तर्क, सुविचार एवं श्रेष्ठ चिंतन से उस आसक्ति को क्रमशः दूर करने का प्रयास करना चाहिए। इसी को साइकोलॉजी में 'कोग्निटिव थेरेपी' के नाम से जाना जाता है।

इसमें नकारात्मक चिंतन का सकारात्मक तर्कों द्वारा उन्मूलन किया जाता है। प्रत्याहार में भी आसक्ति को दूर करने के लिए इंद्रियों को श्रेष्ठ विषयों के प्रति उन्मुख किया जाता है और जब यह सध जाता है तो आसक्ति स्वतः समाप्त हो जाती है।

संसार में विषय के आकर्षण प्रबल हैं। ये इंद्रियों को ललचाते हैं। विषयासक्त इंद्रियां मन को अपनी ओर आकर्षित करती हैं, जबकि मन इंद्रियों का राजा है। उसका तो इंद्रियों पर अधिकार होना चाहिए, पर इंद्रियों के दबाव में जब मन आ जाता है तो सारा खेल उलट जाता है। ऐसी अवस्था में श्रेष्ठ विचारों से इस उलटे क्रम को उलटकर सीधा करने का प्रयास करना चाहिए। यह प्रक्रिया लंबी अवश्य है, परन्तु योगाभ्यासी साधक के लिए इसके अलावा और कोई दूसरा विकल्प नहीं है। मन को साधने की पहली साधना प्रत्याहार है। विषयों में आसक्त मन चेतना के महासागर में छलांग कैसे लगा सकता है, इसलिए राजयोग के महायोगी स्वामी विवेकानंद कहते हैं। कि विषय को नहीं, विषय की आसक्ति को छोड़ना है। आसक्ति छूट जाए तो प्रत्याहार सध जाता है।

भगवान् बुद्ध पहले ऐसे महायोगी थे, जिनके भिक्षुओं में राजकुमारों एवं राजाओं की संख्या बहुतला से थी। उन्होंने इन सबको पार्थिव ऐश्वर्य से एक बड़े ऐश्वर्य के दर्शन कराए थे। बड़ी चीज मिल जाने पर छोटी चीज छूट जाती है। यही है प्रत्याहार। इंद्रियों एवं मन को अपने विषय से हटाकर एक महत् विषय में लगा देना ही प्रत्याहार है। प्रत्याहार में संबंध बना रहता है, परन्तु यह संबंध उच्चस्तरीय हो जाता है। इसके लिए लघुता से विभुता की ओर चलना होगा। सतत सत्संग एवं स्वाध्याय से विषय को परिवर्तित किया जा सकता है। धैर्य एवं सतत प्रयास से मन एवं इंद्रियां स्थिर होती हैं। प्रत्याहार सधने के पश्चात् ही ध्यान के सागर में गहरे गोते लगाना संभव होता है। अतः प्रत्याहार योग-साधना का प्रथम सोपान है। इसे तो पार करना ही पड़ेगा। □

सेवा अस्माकं धर्मः

सेवा मनुष्य के जीवन का आधार है। मनुष्य की वह प्राकृतिक मनोवृत्ति है। अंतःप्रेरणा से की जाने वाली सहायता ही वास्तविक सेवा है। सेवा प्रतिदान नहीं चाहती है। सेवा सहज प्रवृत्ति है।

प्रायः सेवा सप्रयास शुरू होती है और धीरे-धीरे वह आदत बन जाती है।

सेवा में वे ही अद्भुत हो सकते हैं जो निरहंकारी और निःस्वार्थी हैं एवं विश्व को जो आत्मवत् मानते हैं।

सेवा में साधन और साध्य एकाकार हो जाते हैं।

सेवा आत्म-साक्षात्कार है। ईसाइयों के धर्मग्रंथ 'इंजील' में कहा गया है कि यदि तुम अपने पड़ोसी से प्यार नहीं कर सकते, जिसे रात-दिन देखते रहते हो तो फिर तुम उससे कैसे प्रेम कर सकते, जिसे तुमने कभी देखा ही नहीं है। प्राणिमात्र की सेवा ही ईश्वर की भक्ति है, सेवा है।

महात्मा बुद्ध ने भी कहा है कि जो मेरी सेवा करना चाहता है, वह पीड़ितों की सेवा करे।

महात्मा गांधी ने भी यही कहा था, "लाखों गूंगों के हृदय में ईश्वर विराजमान है। मैं उसके सिवा अन्य किसी ईश्वर को नहीं मानता।मैं इन लाखों की सेवा द्वारा उस ईश्वर की पूजा करता हूँ।"

सेवा का भाव पवित्र मन में ही जन्मता है। स्वयं भगवान दीनबंधु है।

अस्पताल एवं झोंपड़ी में रहने वालों, अकाल, बाढ़, भूकंप आदि प्राकृतिक प्रकोप में फंसे लोगों की सेवा तन, मन और धन से करना ही सच्ची सेवा है। मदर टेरेसा का समूचा जीवन इसका उत्कृष्ट उदाहरण है। 19वीं शताब्दी (मई, 1820) में इटली में फ्लोरेंस नाइटिंगल नाम की एक महिला हुई थी जिसने अपना सम्पूर्ण जीवन मानव सेवा को अर्पित कर दिया था। सन् 1854 में क्रिमिया युद्ध में उसने घायल सैनिकों की सेवा की थी। वह 'दीपक वाली युवती' (लेडी विद दी लैंप) नाम से प्रसिद्ध हुई थी क्योंकि वह सदा अपने साथ एक लालटेन रखती थी। सेवा व्रत में वह इतनी डूबी थी कि आजन्म कुमारी रही।

'सेवा वास्तविक संन्यास है।' प्रेमचंद ने इसीलिए कहा था।

'सेवा से हृदय और आत्मा पुनीत होते हैं।' स्वामी विवेकानन्द का यह कथन कितना सार्थक है।

जो पराए काम आता धन्य है जग में वही,
द्रव्य ही को जोड़कर कोई सुयश पाता नहीं।

पुस्तक समीक्षा

इस शहर में



— किशोर अग्रवाल

'इस शहर में' हिन्दी गजलों का एक उत्कृष्ट गजल संग्रह है। गजलकार रमेश प्रसून ने प्रस्तुत गजल संग्रह में विषय की गहराई को पूरे यथार्थ के साथ चित्रित करती हुई 90 गजले पेश की हैं। रमेश जी की गजलें समय की मांग के अनुसार नये जोश व तेवर से कही गई हैं। ये गजलें गागर में सागर भरने की क्षमता के साथ सहज, सरस व गेय भी हैं। प्रसून जी गजलों के माध्यम से मनोभावों को सशक्त अभिव्यक्ति प्रदान करते हैं। गजले पाठक के मन को छू कर कब उसकी बन जाती है इसका पाठक को पता ही नहीं चल पाता।

प्रसून जी ने गजलों में उर्दू के शब्दों का भी प्रयोग किया है किन्तु अरबी तथा फारसी के क्लिष्ट शब्दों के प्रयोग से व बचे हैं।

पुस्तक की भाषा शैली, शब्द विन्यास व अलंकारों का प्रयोग स्तरीय व सराहनीय है। इसमें विचारों की स्पष्ट अभिव्यक्ति व मानवीय संवेदनाओं का गहराई से चित्रण किया गया है। प्रस्तुत गजल संग्रह हिन्दी गजल के क्षेत्र में एक संग्रहणीय पुस्तक है। छपाई सुन्दर व आकर्षक है। कुल मिलाकर 'इस शहर में' पाठकों को तुरन्त जोड़ने की क्षमता रखती है।

प्रसून जी मानव और समाज की मनोस्थिति का चित्रण कुछ इस प्रकार करते हैं—

धूल में तिनका मिला है बस इसी कारण।

दूर तक वह संग हवा के बह नहीं पाया।

कवि की आशावादी दृष्टिकोण भी इस शेर में देखिये—

एक पक्षी जब जरा से पंख फैलाने लगा।

तब उसे आकाश भी छोटा-नजर आने लगा।

देश को जो आजादी मिली उस आजादी पर गजलकार के बेबाक विचारों का एक उदाहरण—

जो मुझे मुझसे मिला दे वह जियाला चाहिये।

यह उजाला वह नहीं है जो उजाला चाहिये।

Mata Amritanandamayi Devi

- Atam Dev



Mata Amritanandamayi (meaning “mother of absolute bliss”) is known the world as India’s “hugging saint mother” which she does as a blessing and therapy. It is her method of giving “darshan”. It is said that no one who wants “darshan” gets refused, and if you join a queue, you’ll always get a hug

from Amma in the end. Devotees find it blissful and soul-soothing. Once asked why she hugs, she said, “It is like asking a river why it flows. That is my character. My karma (destiny) is to console those who are sad.”

When asked how she could embrace each and every one in the same loving way, even if they were diseased or unpleasant, Amma replied, “When a bee hovers over a garden of varied flowers, what it beholds is not the difference between the flowers but the honey within them. Similarly Amma sees the same Supreme Self in each and every one.” It does not matter to her if the devotee is a man or a woman. As the embodiment of supreme motherhood, she welcomes every person who comes to her, listens to his or her problems, offers advice and guidance, and brings reassurance to a troubled heart.

In fact Amma began hugging devotees at an early age. Now she is known to individually hug over 20,000 people in one day, sitting sometimes for over 20 hours. In the past 38 years, Amma has physically hugged more than 28 million people from all parts of the world. In this way she has blessed and consoled the suffering humanity through the simplest of gestures – an embrace.

Mata Amritanandamayi was born to simple and pious parents Sugunanandan and Damayanthi on 27th September, 1953 in a small poor fishing village, Parayakadavu in the Quilon district of Kerala. It is said that when she was born, her entire birth was silent. Her mother felt almost nothing and baby’s face bore a sweet smile. Her parents gave her the name Sudhamani. She spent her childhood and teens immersed in intense spiritual practices. At the tender age of five she used to sing beautiful songs on her beloved Lord. She could often be found absorbed in deep meditation, totally oblivious of her surroundings.

When she was 10, she refused to go to school. Instead she preferred to meditate. She took care of the domestic work full-time. Even as a child she would go out of the way to serve the elderly, the poor and sick. Her family did not approve of her actions but she continued to serve them. Her parents thought she had gone mad. She ran away and took a vow of celibacy and service in the 1970s.

Amma never had a spiritual mentor or guru, nor was she exposed to philosophical books. Her unmistakable Self-realization and wisdom seemed to spark from a constant remembrance of God. She travels most of the year, meeting people from several cultures and religions.

The Washington Times in a story on “Amma’ on her 50th birthday celebration in 2003 wrote: “Amritanandamayi chants the name of the Hindu deity Krishna on a stage as her devotees sit cross-legged, singing songs from different religions, in which the name of a god is not specified. Among the participants was Yolanda King, daughter of slain civil rights leader Martin Luther King. ‘The most profound thing about her is she doesn’t preach from the platform of one religion. She touches everybody. So Christians love her, Muslims love her, everybody loves her,’ Mrs. King said in an interview.” Amma has never sought to convert anyone.

For her **religion is love and service**. She believes that it is important not only to feel love but also to express it. “After all, love is our true nature. When we do not express love in our

words and actions it is like honey hidden in a rock,” she says, “It is of no use to anyone. This mutual sharing and expressing of love should begin at home between married couples and between parents and children. Only then will there be peace and harmony at home and in the society.”

In the 1981, Amma founded Amrita Ashram which has become a centre for innumerable humanitarian services. Some devotees have quit their careers to serve in the villages where she works. The humanitarian activities undertaken by Amma’s Ashram include cultural and spiritual programmes, health care, social welfare, disaster relief, education and nature care. Special mention may be made of the relief work undertaken for villages hit by earthquake (in Gujarat), flood victims (in Bihar and Orissa) and Tsunami; setting up orphanages in India and abroad; organizing mass marriages; and undertaking several other charitable projects. The Ashram has completed construction of 25,000 houses under Amrita Kuteeram Free Homes Project and has now taken up construction of additional 1,00,000 homes in the second phase.

Amma is inspiring a spiritual renaissance throughout India and abroad. Amma has earned international recognition for her outstanding contributions to the world community. She has been regularly invited by the international organizations to address the issues of religious differences, environmental issues and for establishing peace. In 2000 Amma addressed the UN Millennium World Peace Summit. In 2002, she was presented with the Gandhi-King Award for Non-violence, given in recognition of her lifelong work in furthering the principles of non-violence. As Dr. Jane Goodall, while presenting Amma said, “She stands here in front of us. God’s love in a human body.” During the same event, at the UN headquarters in Geneva, she gave the keynote address at the Global Peace Initiative of Women and Religious Leaders.

In 2004 Amma gave address to a thunderous standing ovation on the final evening of the ten-day gathering of the 2004 Parliament of the World’s Religions at Barcelona, Spain. In 2006 Amma was presented with the James Parks Morton Interfaith

Continued on page 71



What can we do for India?

Dr. Abdul Kalam's Letter to Every Indian

Why is the media here so negative ?

Why are we in India so embarrassed to recognize our own strengths, our achievements?

We are such a great nation. We have so many amazing success stories but we refuse to acknowledge them. Why ?

We are the first in milk production.

We are number one in Remote sensing satellites.

We are the second largest producer of wheat.

We are the second largest producer of rice.

Look at Dr. Sudarshan, he has transferred the tribal village into a self-sustaining, self-driving unit. There are millions of such achievements but our media is only obsessed with the bad news and failures and disasters.

I was in Tel Aviv once and I was reading the Israeli newspaper. It was the day after a lot of attacks and bombardments and deaths had taken place. The Hamas had struck. But the front page of the newspaper had the picture of a Jewish gentleman who in five years had transformed his desert into an orchard and a granary. It was this inspiring picture that everyone woke up to. The gory details of killings, bombardments, deaths, were inside in the newspaper, buried among other news.

In India we only read about death, sickness, terrorism, crime.. Why are we so NEGATIVE? Another question: Why are we, as a nation so obsessed with foreign things? We want foreign T.Vs, we want foreign shirts. We want foreign technology.

Why this obsession with everything imported. Do we not realize that self-respect comes with self-reliance? I was in Hyderabad giving this lecture, when a 14 year old girl asked me for my autograph. I asked her what her goal in life is..She replied: I want to live in a developed

India. For her, you and I will have to build this developed India. You must proclaim - India is not an under-developed nation; it is a highly developed nation.

YOU say that our government is inefficient.

YOU say that our laws are too old.

YOU say that the municipality does not pick up the garbage.

YOU say that the phones don't work, the railways are a joke.

The airline is the worst in the world, mails never reach their destination.

YOU say that our country has been fed to the dogs and is the absolute pits.

YOU say, say and say...What do YOU do about it?

Take a person on his way to Singapore. Give him a name-'YOURS'. Give him a face - 'YOURS'. YOU walk out of the airport and you are at your International best. In Singapore you don't throw cigarette butts on the road or eat in stores. YOU are as proud of their Underground links as they are. You pay \$5 (approx. Rs. 60) to drive through Orchard Road (equivalent of Mahim Causeway or Pedder Road) between 5 PM and 8 PM. YOU come back to the parking lot to punch your parking ticket if you have over stayed in a restaurant or a shopping mall irrespective of your status identity. In Singapore you don't say anything, DO YOU? YOU wouldn't dare to eat in public during Ramadan, in Dabai. YOU would not dare to go out without your head covered in Jeddah.

YOU would not dare to buy an employee of the telephone exchange in London at 10 pounds (Rs. 650) a month to, 'see to it that my STD and ISD calls are billed to someone else. 'YOU would not dare to speed beyond 55 mph (88 km/h) in Washington and then tell the traffic cop, 'Jaanta hai main kaun hoon (Do you know who I am?). I am so and so's son. Take your two bucks and get lost.' YOU wouldn't chuck an empty cocount shell anywhere other than the garbage pail on the beaches in Austraiia and New Zealand.

Why don't YOU spit Paan on the streets of Tokyo ? Why don't YOU use examination jockeys or buy fake certificates in Boston???

We are still talking of the same YOU. YOU who can respect and conform to a foreign system in other countries but cannot in your own. You will throw papers and cigarettes on the road the moment you touch Indian ground. If you can be an involved and appreciative citizen in an alien country, why cannot you be the same here in India? In America every dog owner has to clean up after his pet has done the job. Same in Japan.

Will the Indian citizen do that here? He's right. We go to the polls to choose a government and after that forfeit all responsibility.

We sit back wanting to be pampered and expect the government to do everything for us whilst our contribution is totally negative. We expect the government to clean up but we are not going to stop chucking garbage all over the place nor are we going to stop to pick a up a stray piece of paper and throw it in the bin. We expect the railways to provide clean bathrooms but we are not going to learn the proper use of bathrooms. We want Indian Airlines and Air India to provide the best of food and toiletries but we are not going to stop pilfering at the least opportunity.

This applies even to the staff who is known not to pass on the service to the public.

When it comes to burning social issues like those related to women, dowry, girl child and others, we make loud drawing room protestations and continue to do the reverse at home. Our excuse ? 'It's the whole system which has to change, how will it matter if I alone forego my sons' rights to a dowry.' So who's going to change the system?

What does a system consist of? Very conveniently for us it consists of our neighbours, other households, other cities, other communities and the government. But definitely not me and YOU. When it comes to us actually making a positive contribution to the system we lock ourselves along with our families into a safe cocoon and look into the distance at countries far away and wait for a Mr. Clean to come along & work miracles for us with a majestic sweep of his hand or we leave the country and run away.

Like lazy cowards hounded by our fears we run to America to bask in their glory and praise their system. When New York becomes insecure we run to England. When England experiences unemployment, we take the next flight out to the Gulf. When the Gulf is war struck, we demand to be rescued and brought home by the Indian government. Everybody is out to abuse and rape the country. Nobody thinks of feeding the system. Our conscience is mortgaged to money.

Dear Indians, The article is highly thought inductive, calls for a great deal of introspection and pricks one's conscience too...I am echoing J.F. Kennedy's words to his fellow Americans to relate to Indians...

'ASK WHAT WE CAN DO FOR INDIA AND DO WHAT HAS TO BE DONE TO MAKE INDIA WHAT AMERICA AND OTHER WESTERN COUNTRIES ARE TODAY'

Lets do what India needs from us.

Continued from page 67

Award for her outstanding role as a spiritual leader and humanitarian and in particular for her organization's massive relief work in the wake of the 2004 Asian tsunami. In 2009, Amma endorsed Earth Charter. In May, 2010 the State University of New York (SUNY) presented spiritual leader and humanitarian Sri Mata Amritanandamayi Devi (Amma) with an honorary doctorate in humane letters.

Amma says, "My sole mission is to love and serve one and all. Amma's only wish is that her hands should always be on someone's shoulder, consoling and caressing them and wiping their tears, even while breathing her last." When asked what she would do if chosen as the leader of the world, Amma spontaneously replied, "I would be a sweeper" so that she could sweep everybody's mind clean.

"Light the lamp of love within you and move forward. When we take each step with good thoughts and a smiling face, all the goodness will come to us and fill our being. Then God cannot possibly stay away from us. He will embrace us."

Laughter as Medicine

Laughter is the elixir of life, it is said to be the best medicine. And what more, it is for free. Laughter is known to cure diseases, bring about miracles in people's lives. Laughter makes us feel better, reduces stress levels, generates a warm fuzzy feeling, and takes our mind off negative thoughts and events. A good hearty laughter touches our emotional core and brings out the child in us. We begin to see things more clearly, without judgements, without pain. Laughter ignites our creativity and our power to heal. The mind has infinite power to change and adapt, to heal and cure. Laughter can set the mind free.

Laughter therapy is a therapeutic alternative method that uses positive emotions generated by laughter to cure ailments and maintain a healthy body. Due to increased stress, unhealthy diets, reduced exercise and fast lifestyle, our bodies become weak and prone to a variety of diseases. Elderly people can suffer from a variety of diseases due to their reduced immunity, and a life long of unhealthy habits. Although not all diseases would be cured completely, laughter can bring several positive changes in your lifestyle.

Laughter is the best stress-reducing instant cure. Stress can lead to several heart related problems such as heart attacks, strokes and cardiac arrest. Laughter helps to reduce blood pressure and lowers cholesterol levels. Laughter therapy is known to reduce hormones, increase muscle movement, boost immune system, increase disease fighting cells and proteins, and trigger release of endorphins (body's natural painkillers).

There are several ways to get a good heartfelt laughter, be it a chuckle, a giggle, a snort or a snicker. You can give out a ringing laughter, a roaring one, bubbling or a pealing one. Any way you laugh, or for any reason, laughter will help you lighten up. Laughter will increase your blood circulation, and strengthen your immune system. A few hours of laughter every day will increase your memory, thinking ability and intellectual capacity.

(Compiled)

On Elders' Day

10 Tips to keep young

★ Stay physically Active

Physical activity can boost your brain power. The more strenuous the activity, the better the brain functions.

★ **Be accessible :** Keep communication channels open to one and all. Never shut yourself out from the world.

★ **Sewa :** You will be respected if you work not just to earn money.

★ **Never stop learning :** Every interaction, every experience teaches us something.

★ **Learn to live in isolation :** Meditation and silence can work wonders.

★ **Stay up to date :** Use Internet / read a lot, increase knowledge, know what is going on around you and in the world.

★ **The work you love to :** Your twilight years must enable you to do/ work towards what you always wanted to

★ **Learn to say 'No' :** People may want you to continue accepting responsibilities your health/age won't permit.

The BRAIN, not the BODY, is the pacemaker in the process of aging. The OLD brain is far from being diminished in capacity. It is actually a strong, experienced, intelligent and well nourished organ.

★ ★ ★

Growing old is no more than a bad habit, which a busy man has no time to form.

Know Your Limits

- Acharya Mahapragya

- 1 Equanimity and balance mean there is *anekanta*. It will help you find peace.
- 2 Loss and gain, praise and insult, life and death; go along with them, that's *anekanta*
- 3 If you want praise, be ready for insult as well. Otherwise keep your equanimity.
- 4 All problems can't be solved by meditation alone. Know that every thing has its limits
- 5 Cultivate a multilateral perspective to enrich yourself. This is preferable to a unilateral view.

Loss and gain, praise and insult, life and death, all go together. We have to go along with them; then we are true followers of *anekanta*. This way, problems can be brought under control. But we are so strange. We don't want to move along with them. We want to move independently. We want gain but not loss, joy but not sorrow, life but not death and only praise, never condemnation. We then forget the universal rule in a dualistic world, nothing comes alone; everything is in pairs. But because of ignorance, we want to break the order of *anekanta*; we want only a single dimension. We don't wish to follow the universal rule.

Anekanta means there is equanimity and balance. If gain is desired then be ready for loss also. If praise is desired then be ready for insults also. If you desire life, then desire death too. If you desire joy then desire sorrow too. If you do not want either then keep your equanimity. With *anekanta* in your life, you can find peace.

All rules are relative; none are independent and they have their limitations. Neither religion nor meditation can contain all problems for there are limits to their usefulness. That everything can be achieved with religion and meditation is a myth.

Everything has its own limits. This is *Anekanta's* mantra. It is essential to know the limits. Meditation can solve problems but only

those that fall within its ambit. Even the greatest of sages has to drink water, eat food. He has to wear clothes and at times even undergo medication. This is how Ayurveda came into being.

Once many sages were meditating in the Himalayas and they fell ill. The question was why did this happen while they were all observing restraint, practicing celibacy and meditating? Sage Bhardwaj was asked to meet Lord Indra to know the reason for this and request him for the solutions.

Nothing can be looked at from one angle and it should be recognised that meditation is not the solutions to all ills. Let us understand its limits. It is true that with meditation mental problems can be alleviated. Ailments born due to passions can be eliminated and when this happens, mental problems do not exit. But how can meditation remove all ailments? It is not possible. A mosquito bites and one gets malaria. This is not a mental problem. How can meditation remove this?

Sarva Anekanta, asarva asarvatmakam: Everything can happen due to anyone or anything or everthing can happen due to one thing. *Anekanta*, however does not accept has the capability to be everything. Nor does everyone have the capacity to do everything and anything. It is important to know the limits. Every meditation practice has its limits. Every work has its limits. Once we know the has its limits. Once we know the limits then there will be no problems.

Some people take a narrow and unilateral view and question the very premise of meditation. What can you train by sitting idle? This is a unilateral view. With this view many things become difficult. The one who does not know what meditation is, has never experienced it, has never entered the meditative state and has not evaluated its role, will surely find it a waste of time and nothing more than that. But the one who has entered the meditative mould and experienced the pleasures of meditation will think in contains the secret to a successful life.



***Action may not always bring
happiness, but there is no
happiness without action.***

- Benjamin Disraeli

Life Expectancy vs. Health Expectancy

- B. M. Hegde

Modern hi-tech medicine claims that it has increased human life expectancy. In fact, the life expectancy started increasing with better food supply and better education of the masses making them live a healthier life.

In developing countries, life expectancy could have a quantum jump if only infant mortality comes down.

Life expectancy is a statistical term, which does not mean that human life span has increased in this century due to all the hi-tech stuff that we are trying to sell to the gullible public !

On the contrary, life span has come down from the usual 120-140 years that some of the aboriginal races in certain pockets of the world still enjoy. It is now estimated that the average American life expectancy cannot to beyond 89 years even in the next millennium.

If a mother gives birth to ten children and if eight of them die around birth, as used to happen in many poor nations, even if the other two children live up to 100 years, the life expectancy of another child being born to any mother in similar setting would be only twenty years (100 multiplied by 2 and divided by 10). This could change dramatically if instead of eight children dying around birth, only four die and the rest live for 100 years, the life expectancy in that setting would jump to 60 years!

Now one can understand the meaning of the word life expectancy. The change in life expectancy, therefore, has very little to do with the so-called hi-tech curative medicine.

The maximum number of years any species could live is called life span. This is fixed as early as the day one is made in the mother's womb, in the genetic material. This cannot and would not change with even the highest tech. efforts.

The Hayflick's rule gives each cell its maximum capacity to re-

produce and apoptosis tells the cells when to die (in certain cells like the heart muscle cell there is no apoptosis under normal circumstances).

Recent efforts to increase the life span by genetic engineering also have come to naught, as senescence could not be halted in those modified cells.

It is no use having a 150-years old very senile vegetable in society. Life span has remained the same since the dawn of the human race.

Health expectancy is the time interval between birth and the end of healthy life-before the onset of any major incapacitating illness. Man is healthy only when he is creative in society. Absence of physical illness is not the complete definition of health.

In fact, many people with physical diseases are more creative, and consequently healthier, than their counterparts in society without any physical disease, but having no enthusiasm.

Thus defined, health becomes a very useful commodity in society. In fact, healthy people in society could even make society more tranquil. □

Men for the sake of getting a living, forget to live.

- Margaret Fuller

The only thing you take with you when you're gone is what you leave behind.

- John Allston

The tragedy of life is not that it ends so soon, but that we wait so long to begin it.

- W.M. Lewis

In three words I can sum up everything I have learned about life : IT GOES ON.

- Robert Frost

Always look at what you have left. Never look at what you have lost.

- Robert H Schuller

Uses of Adversity

"When heaven is about to confer a great responsibility on any man, it will exercise his mind with suffering, subject his sinews and bones to hard work, expose his body to hunger, put him to poverty, place obstacles in the paths of his deeds, so as to stimulate his mind, harden his nature and improve wherever he is incompetent."

Meng Tzu, a third century B.C. Chinese Saint.

In India, we have a notion of fate and predestination. We believe that on the day of birth, God writes the destiny of each child upon his or here forehead. Suppose that on the day your child is born, you are given two gifts: a pair of glass that allows you to read this forecast, and a pencil that allows you to edit it. What would you do. Naturally you will like to write that he/she will grow into a healthy child, will be a brilliant student, will get a decent job, then marry a beautiful spouse of his/her choice, raise children and live happily ever after.

But be careful with your pencil when writing all these good things for your child. According to some scientists by completely erasing adversity from your child's future you may leave him or her weak and underdeveloped. There is a theory which says that people need adversity, setbacks and even traumas to reach highest levels of strength, fulfillment and personal development.

Though research in health psychology focuses on stress and its damaging effects. But a major concern in this research literature has always been resilience-the way people cope with adversity, fend off damage and bounce back to normal functioning. A large body of research shows that although traumas, crises and tragedies come in thousand forms, people benefit from them in three ways.

The first benefit is that rising to a challenge reveals you hidden abilities, and seeing these abilities changes your self-concept. None of us know what we are really capable of enduring. It the calamity that fell upon you did not kill you, it definitely made you stronger. People who have suffered business losses, accidents, loss of the beloved ones become much stronger after they come out of the trauma. Dalai Lama says", The person who had more experience of hardships

can stand more firmly in the face of the problems than the person who has never experienced suffering. And from this angle suffering can be a good lesson for life."

The second class of benefit concerns relationship. Adversity is a filter. If a woman becomes a widow and loses a beardwinner, a child loses his father or a person is diagnosed with cancer, more friends and family members rise to the occasion and give help and support. Others may turn away, unsure of what to do or fearing their own discomfort and responsibility. Adversity does not just separate the fair weather friends from the true, it strengthens relationships and opens people's hearts to one another. We often develop love for those we care for us, and we usually feel love and gratitude toward those who cared for us in a time of need.

There is a third benefit also. Traumas, threats to life and near death experience may change our philosophy of life and our attitude toward the present and toward other persons. We learn to live each day to the fullest. Many murderers become patrons of humanity when facing death themselves and are saved by a whisker. A diagnosis of some fatal disease proves a wake up call for many persons and comes as a turning point in their life. They come to realize that life is a precious gift they have been taking for granted and that people matter more than money. Misers may become generous and wickeds may transform into saints.

But by what I have said in the above paragraphs I do not mean that we should celebrate suffering. Diagnosis of a fatal disease like cancer or undergoing a trauma are not things to rejoice. I want to make the point that suffering and hardship are not always bad for all the people. There is always some good mixed with the bad. These may prove to be the key to moral and spiritual development. Shakespeare correctly wrote:

"Sweet are the uses of adversity,
Which like toad, ugly and venomous,
Wears yet a precious jewel in his head"

(Compiled)

e

Why do we chant Om?

Om is one of the most chanted sound symbols in India. It has a profound effect on the body and mind of the one who chants and also on the surroundings. Most *mantras* and vedic prayers start with Om.

All auspicious actions begin with Om. It is even used as a greeting-Om, Hari Om etc. It is repeated as a *mantra* or meditated upon. Its form is worshipped, contemplated upon or used as an auspicious sign.

Om is the universal name of the Lord. It is made up of the letters A (phonetically as in "around"), U (phonetically as in "put") and M (phonetically as in "mum"). The sound emerging from the vocal chords starts from the base of the throat as "A". With the coming together of the lips, "U" is formed and when the lips are closed, all sounds end in "M"

The three letters symbolise the three states (waking, dream and deep sleep), the three deities (Brahma, Vishnu and Shiva), the three Vedas (Rig, Yajur and Sama) the three worlds (Bhuh, Bhuvah, Suvah) etc. The Lord is all these and beyond.

The formless, attributeless Lord (Brahman) is represented by the silence between two Om chants. Om is also called *pranava* that means, "that (symbol or sound) by which the Lord is praised".

The entire essence of the Vedas is enshrined in the word Om. It is said that the Lord started creating the world after chanting Om and atha.

Hence its sound is considered to create an auspicious beginning for any task that we undertake. The Om chant should have the resounding sound of a bell (aaommm).

Om is written in different ways in different places. The most common form symbolises Lord Ganesha.

The upper curve is the head; the lower large one, the stomach; the side one, the trunk; and the semi-circular mark with the dot, the sweetmeat ball (modaka) in Lord Ganesha's hand.

Thus Om symbolises everthing - the means and the Truth behind it, the material and the sacred, all form and the formless.

- By a Saint

पत्र जगत

ज्ञान प्रभा में प्रकाशित लेख बहुत ही शिक्षाप्रद और रोचक होते हैं। इससे प्रभावित होकर मैंने कई सदस्यों को जोड़ने का प्रयत्न किया है।

ज्ञान प्रभा में सेवा समर्पित नाम से लेख माला ऐसे विशिष्ट व्यक्तियों के विषय में निकल रही जिन्होंने सेवा के क्षेत्र में उत्कृष्ट कार्य किया है। ऐसे व्यक्तियों में एक नाम महात्मा हंसराज जी का भी है।

महात्मा हंसराज का जन्म 19 अप्रैल सन 1864 में पंजाब के बजवाड़ा नाम के गांव (जिला होशियारपुर) में हुआ था। उनका बचपन बड़ी गरीबी में बीता। 3 मील दूर नंगे पाँव धूप में सिर पर बस्ता रख कर उन्हें स्कूल जाना पड़ता था। आप बचपन से ही तेज बुद्धि और प्रतिभाशाली थे। दूसरे की सहायता करने की भावना बचपन से ही थी। 12 वर्ष की छोटी आयु में पिता चुन्नी लाल जी का देहान्त होने के बाद बड़े भाई लाला मुल्क राज ने लाहौर के मिशन हाई स्कूल में दाखिल करा दिया। बी.ए. पास करने के बाद उन्हें महर्षि स्वामी दयानन्द सरस्वती जी के प्रवचनों को सुनने का लाहौर में अवसर मिला। एक व्याख्यान में स्वामी जी ने बताया कि मानव को जीवन सफल करने के लिए 6 गुणों को धारण करने की आवश्यकता है-पहिला-विद्या का पठन पाठन, दूसरा-उत्तम स्वभाव, तीसरा-सत्य बोलने का व्रत धारण करना, चौथा अभिमान से रहित होना, पांचवां-संसार के कष्ट दूर करने के लिए हमेशा तत्पर रहना, छठा परोपकार के कार्यों में संलग्न रहना। तभी से उन्होंने ने निश्चय कर लिया कि मैं एक आदर्श मानव बनूंगा।

30 अक्टूबर 1883 को महर्षि स्वामी दयानन्द सरस्वती का स्वर्गवास हो गया। इनकी स्मृति में पंजाब की आर्य समाजों के अधिकारीगणों ने प्रथम दयानन्द एंग्लो वैदिक विद्यालय की लाहौर में ही स्थापना की। नवयुवक हंसराज ने विद्यालय को अपनी सेवाएँ समर्पित कीं और कहा कि वे कोई वेतन नहीं लेंगे। 1886 को लाहौर में स्थापित प्रथम डी.ए.वी. विद्यालय के मुख्याध्यापक के रूप में लाला हंस राज जी ने अपने त्याग, प्रतिभा एवं विशिष्ट गुणों के आधार पर उस विद्यालय के स्तर को इतना ऊंचा उठाया कि जर्मन विद्वान मैक्समूलर ने कहा था "We have everything but we have no Hans Raj" उस समय के विदेशी सरकार की सहायता लिए बिना ही उन्होंने 2 वर्षों उपरान्त विद्यालय को महाविद्यालय में बदल दिया। 25 वर्ष तक अत्यन्त

परिश्रम, त्याग, ईमानदारी एवं निष्काम भाव से संस्था में प्रिन्सीपल के पद पर कार्य के बाद 1911 में त्याग पत्र दे दिया और देश में वेदों पर आधारित उच्च कोटि की शिक्षा देने हेतु कई डी.ए.वी. स्कूल और कॉलेज खोले। 1927 में लाहौर में महिला महाविद्यालय को स्थापना की। देश में सहयोगियों सहित धूम-धूम कर गरीबों व पीड़ितों की खूब सेवा की। 1934-35 में क्वेटा में आए भीषण भूकम्प में पीड़ितों की सेवा में तत्परता से कार्य करते रहे। वे एक सच्चे समाज सुधारक और कर्म योगी थे। अधिक परिश्रम करने कारण महात्मा जी अस्वस्थ रहने लगे। 74 वर्ष की आयु में 15 नवम्बर 1938 को उनका स्वर्गवास हो गया।

महात्मा जी के शिष्यों में सर सिकन्दर हयात खां भी थे जो उस समय के पंजाब के मुख्यमंत्री थे। महात्मा जी के देहावसान पर शोक में पंजाब असेम्बली के कार्य को स्थगित कर दिया गया और उन्होंने कहा "जब हमारी मां गुजरी थी तो हम बिना मां के हो गये थे परन्तु महात्मा हंसराज जी के देहावसान से हम यतीम हो गए हैं।"

आज देश में हजारों डी.ए.वी. स्कूल, कॉलेज, हंसराज स्कूल, कॉलेज उच्च कोटि की शिक्षा प्रणाली द्वारा उत्तम कार्य कर रहे हैं। मुम्बई (महाराष्ट्र), चैन्नयी (तामिलनाडू), उत्तर प्रदेश, पंजाब, हरियाणा, दिल्ली, राजस्थान, बिहार, मध्य प्रदेश, प. बंगाल आदि में डी.ए.वी. स्कूलों और कॉलेजों की पढ़ाई एवं अन्य कार्यक्रमों का स्तर देश के अन्य पब्लिक स्कूलों से बढ़कर है क्योंकि यहाँ वैदिक विचारों पर आधारित नैतिक मूल्यों की और देश भक्ति की भावनाओं को विकसित करने की शिक्षा दी जाती है।

आर. सी. पुरी
ग्रेटर कैलाश-I
नई दिल्ली

संस्कृत एवं भारतीय संस्कृति

ज्ञानप्रभा का पिछला अंक अत्यंत उच्च कोटि का था भारतीय संस्कृति पर दिये गये लेख उत्कृष्ट एवं सूचनाप्रद थे। संस्कृत भाषा का भी हमारी संस्कृति के उन्नयन में महत योगदान रहा है।

देश की परम्पराओं ओर सांस्कृतिक विरासतों का प्रतिनिधित्व संस्कृत भाषा ने ही किया है। संस्कृत किसी प्रांत, सम्प्रदाय विशेष की भाषा नहीं अपितु सम्पूर्ण विश्व की भाषा है चाहे पूरब हो या पश्चिम। संस्कृत में उपलब्ध साहित्य के कारण ही इसके

वैज्ञानिक महत्व को समझते हुए, अमेरिका, इंग्लैंड ने अपने यहां वैदिक गणित को अपने पाठ्यक्रम में सम्मिलित कर लिया है। अमेरिकी वैज्ञानिक ब्लूमफील्ड ने इस मान्यता को सिद्ध कर दिया कि 'पाणिनी की अष्टाध्यायी की सहायता से ही अमेरिका कम्प्यूटर का अविष्कार कर पाया।'

मुगल शासकों ने भी संस्कृत के महत्व को स्वीकार किया। प्रसिद्ध इतिहासकार रमेश मजूमदार कहते हैं कि मुसलमान संस्कृत प्रेमी थे। प्रमाण के तौर पर गुजरात के शासक काफी समय तक संस्कृत को राजभाषा के रूप में व्यवहार में लाए थे। संस्कृत प्राकृत और अपभ्रंश भाषा के मर्मज्ञ प्रसिद्ध साहित्यकार अब्दुल रहमान थे। शाहजहां के शासनकाल में भी संस्कृत को राजकीय भाषा का सम्मान प्राप्त था। दारा शिकोह का संस्कृत प्रेम तो जग जाहिर है जिसकी प्रेरणा से उपनिषदों और भगवद्गीता का फारसी में अनुवाद कराया गया। संस्कृत को अकबर बादशाह के कार्यकाल में भी पूर्ण सम्मान प्राप्त था।

समाज और सभ्यता के समझने हेतु संस्कृत का ज्ञान आवश्यक है। खगोल तथा भूगोल का सूक्ष्मतम ज्ञान संस्कृत के माध्यम से ही प्रकट हुआ है। सर्वप्रथम ग्रहों का परिचय आर्यभट्ट की पुस्तक 'आर्यभट्टीय' से प्राप्त हुआ। चिकित्सा विज्ञान की परम्परा भारत में ऋग्वेद काल से चली आ रही है। आयुर्वेद के ज्ञाता चरक ने 'चरक संहिता' में पाचन तंत्र, शरीर में पोषक पदार्थों का परिवर्धन एवं क्षय का वर्णन किया है। शल्य चिकित्सा के विद्वान धन्वन्तरी भी संस्कृत भाषा के विद्वान थे।

साहित्य और संस्कृत काव्य की दृष्टि से संस्कृत का स्थान उच्चकोटि का है। आद्यकवि वाल्मीकि ने रामायण की रचना संस्कृत में ही की। महाभारत के प्रेरणास्रोत महर्षि वेद व्यास, नाट्य विद्या मर्मज्ञ कालिदास आदि कवियों की कृतियां संस्कृत साहित्य का अनमोल खजाना है।

कमल कान्त दिल्ली

हमारा स्वार्थ और अभिमान है सभी दुःखों का कारण।
संसार के सभी धर्म सच्चे हैं, उनमें कोई फर्क नहीं है। वे ईश्वर तक पहुंचने के अलग-अलग रास्ते मात्र है।
कोई किसी का गुरु नहीं है, ईश्वर ही सबका गुरु और मार्गदर्शक है।

स्वामी राम कृष्ण परम हंस

Letter to the Editor

I went through the 18th issue of Gyan Prabha. The articles on culture are excellent and readable but all are in Hindi. Gyan Prabha is a bilingual magazine and atleast one article on culture should be in English. I am giving briefly the main characteristics of Indian culture for the benefit of non Hindi speaking readers.

Humanness - The kindness and softness of the Indian's is known the world over. Despite the aggressiveness of the Muslim invaders and conquerors and the zealous reforms of the British, the Portuguese and the Dutch the Indians continue to be noted for their humanness and stoic nature.

Unity-India is a conglomeration of men and women of different castes and creed, sects and beliefs. It is a mix of old traditional values and the modern principles and hence satisfies all the three generations of present India.

Social system-Despite recently cropped up concept of nuclear family in the urban areas the Indian Social System continues to be based on the Joint family System in the rural areas where larger chunk of people live. The families are closely knit with grandfathers, fathers, sons and grandsons sharing the same spirit, tradition, customs and the feelings.

Indian culture treats the guests as God. in fact it attaches them more importance and value than their own family members. Even if we don't have anything to eat, the guests are never left hungry and are provided food through any arrangement.

To a friend or a person, we join our hands (palms together), bow down in front of the other persons, and say Namaste, Namaskar, or Pranam.

God dwells in the heart of every human being. The joining of hands symbolizes the meeting of two souls, our real self actually meets Itself. This signifies reverent salutations and Unity of souls.

-V.K. Sharma, Ghaziabad

अपनी बात		1
Editor's Reflections		6
Holy Wisdom		9
विश्व वन्दनीय भारतीय संस्कृति	स्व. विष्णुकान्त शास्त्री	10
आध्यात्मिकता-भारत की आत्मा एवं भारतीय संस्कृति की पहचान	डॉ. प्रदीप कुमार	12
संस्कृति के नए आयाम	सुभाष सेतिया	15
भारतीय संस्कृति में नारी अस्मिता और नारी संघर्ष (पिछले अंक का शेष)	आशा रानी व्होरा	18
भारतीय संस्कृति में गुरु शिष्य परम्परा	आर. के. श्रीवास्तव	23
सांस्कृतिक परिदृश्य और नए संचार-माध्यम	नंद भारद्वाज	27
संस्कृति-दशा एवं दिशा	डॉ. श्रीमती बसन्ती हर्ष	31
भारतीय संस्कृति के उन्नायक श्रीराम	आचार्य चन्द्रहास शर्मा	34
विश्वव्यापी जल संकट	डॉ. आर. एस. सेंगर	38
सम्मान अर्जन हेतु प्रौढ़ भी आत्म मंथन करें	डॉ. धर्मवीर सेठी	40
कलम के सिपाही के जीवन की कहानी-बकलम खुद	मुंशी प्रेमचन्द	44

आलोकपर्व दीपावली	दादूराम शर्मा	53
सरदार पटेल-कुछ संस्मरण	प्रियवंद	56
योग साधना का आवश्यक सोपान-प्रत्याहार		60
सेवा अस्माकं धर्मः		63
इस शहर में	किशोर अग्रवाल	64
Mata Amritanandamayi Devi	Atam Dev	65
Dr. Abdul Kalam's Letter to Every Indian		68
Laughter as Medicine		72
On Elders' Day		73
Know Your Limits	Acharya Mahapragya	74
Life Expectancy vs. Health Expectancy	B.M. Hegde	76
Uses of Adversity		78
Why do we chant Om?		80
पत्र-जगत		81
Letter to the Editor		84